प्रकाशकः—
श्री अखिल विश्व जैन मिशन
अलीगज (एटा)
उ० प्र०

जिओ और जीने दो !

अहिंसा परमो धर्मः यतो धर्मस्ततो जयः !

किसी को भी न त्रास दो !

मुद्रक.—
महावीर मुद्रणालय,
अलीगज (एटा)
उ० प्र०

भूमिका

जैन तीर्थङ्कर भगवान ऋषभनाथ जी प्रथम तीर्थङ्कर होने के कारण 'आदिनाथ' नामसे भी प्रसिद्ध हैं। पुराण-ग्रंथों तथा अन्य प्राचीन भारतीय साहित्य मे उनके चरित्र का वर्णन विविध रूपों मे हुआ है। जो विवरण उपलब्ध हैं उनसे ज्ञात होता है कि भगवान् ऋषभ उच्चकोटि के त्यागी-महात्मा हुए। महाभारत, बौद्ध ग्रन्थ 'दीर्घनिकाय' तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों मे सुख-शांति वाले एक स्वर्ण युग की परिकल्पना की गई है। उसके बाद एक समय वह आया जब कि लोग दैवी गुणों को भूल गए और 'मात्स्यन्याय' की स्थिति मे आकर एक-दूसरे को सताने लगे। ऐसी स्थिति से बचाकर मानव को कल्याणकारी मार्ग बताने वाले भगवान ऋषभ हुए, ऐसी मान्य परम्परा है। समाज की विषमताओं को दूर करना, सुख शांति और कल्याण को सभी प्राणियों के लिए सुलभ बनाना तथा गुणों का विकास करना भगवान ऋषभ के जीवन का उद्देश्य था। उन्हें जन-कल्याण के सृष्टा तथा भारतीय संस्कृति के आदि प्रवर्तक के रूप में आदर किया जाता है, जो उचित ही है।

भारतीय मूर्तिकला में आदिनाथ जी को प्रायः पद्मासन पर ध्यान-मुद्रा मे स्थित आलेखित किया गया है। उनके कंधों पर केशों का लटें मिलती है। परवर्ती प्रतिमाओं मे उनके मुख्य लाञ्छन वृषभ (वैल) को दिखाया गया है। उनका योगी-रूप सभी प्रतिमाओं मे परिलक्षित है। कुषाणकाल से जिन सर्वतोभद्रका प्रतिमाओ का निर्माण प्रारभ हुआ उनमें भगवान ऋषभ को प्रथम स्थान प्रदान किया गया। ऐसी कला कृतियों मे अन्य तीन प्रमुख तीर्थङ्करों (नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर) की प्रतिमाओं के साथ उन्हे पद्मासन तथा खड्गासन-इन दोनों रूपो मे प्रदर्शित किया गया है। ईस्वी प्रथम शती से लेकर मध्यकाल के अत तक भगवान ऋषभ की बहु-सख्यक प्रतिमाओ का निर्माण भारत के विभिन्न भागो मे हुआ इनमे कितनी ही अभिलिखित प्रतिमाएँ हैं। इनके द्वारा विभिन्न युगो मे विकसित होने वाली कला के रूप का पता चलता है। साथ ही अभिलेखों से जैन धर्म के विभिन्न गणो, कुलो शाखाओं आदि का भी ज्ञान प्राप्त होता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक ने भगवान ऋषभ के सम्बन्ध मे प्राचीन साहित्य, पुरातत्व एव जन श्रुतियों मे उपलब्ध सामग्री का विवेचन किया है। उन्होंने प्राचीन भारत के समाज, धर्म, दर्शन और लोक-जीवन की झाँकी प्रस्तुत करते हुए यह दिखाया है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था को मोड़ने मे भगवान ऋषभ का क्या योग रहा है। भारतीय परम्परा मे प्राप्त अनेक गुत्थियो को सुलझाने का भी प्रयत्न लेखक द्वारा सरल शैली मे किया गया है। भगवान ऋषभ के बहुमुखी जीवन के सम्बन्ध में यह ग्रंथ निस्सदेह एक नवीन, व्यवस्थित प्रयास है।

सागर विश्वविद्यालय,
८ सितम्बर, १९५९

कृष्णदत्त बाजपेयी

अपनी बात ।

'गुन-समुद्र तुम गुन अविकार,
कहत न सुरगुरु पावैं पार ।'

जिनके गुणोका ओर-छोर देवताओं के गुरु वृहस्पति भी न पा सके, उनका वर्णन इस युगका एक निरीह मानव कर सकेगा–यह कल्पना करना दुरूह है। हा, इस कठिनाई मे भी निरीह मानवके लिये आशाका सवल मिलता है और वह यह है कि तीर्थंकर ऋषभ अथवा वृषभ भी आखिर मनुष्य थे । मनुष्य होने के नाते मनुष्य उनको सोच, समझ और पहिचान सकता है। देवत्व प्रारम्भ मे दूर की चीज है क्योकि वह अन्तर मे छिपा हुआ है फिर भी उसका आभास मानवत्व मे दृष्टिगोचर होता है। अत पहले मानव मानव वनने के लिये मानवता को पहिचाने। इस दृष्टिकोणसे जव हम तीर्थङ्कर ऋषभ अथवा वृषभ की पावन जीवनी पर दृष्टिपात करते हैं तो पाते है उनको लोकोपकार और विशिष्ट ज्ञानी महापुरुष! वह मानवको सभ्य और शिष्ट जीवन की अ-आ-इ-ई पढाते है और नाना प्रकारके आविष्कारो का सृजन करके मानव जीवन की सुख-समृद्धि का साधन उपस्थित करते है । उनके प्रारभिक जीवन का आदर्श मानवता के लिये महती प्रेरणा और उत्कर्षका स्रोत है। कवि पोपने भी मानवको लक्ष्यकर ठीक ही कहा है कि 'मानव! तू अपने को पहिचान । मानव जाति के लिए मानव ही अध्ययन की ठीक वस्तु है।'

'Know then thyself, presume not God to scan,
The proper study of mankind is Man'

सभी तीर्थङ्कर मानव थे और ऋषभ भी । अलबत्ता इन्होंने अपने कई पूर्व जन्मो से मानवता का अध्ययन किया था और उसे अपने ऐहिक जीवनो मे विकसित भी किया था-इसीलिये वह जन्मसे ही विलक्षणता लिये हुये थे । उनका शरीर विलक्षण—समचतुरसस्थान और वज्रवृषभनाराच सहनन को लिये हुये अपूर्व वल और सौन्दर्य का आगार था, उनका ज्ञान अद्भुत अवधिज्ञान (Clairvoyance) था । उनका मन मानवताका प्रति वम्व दयाका सिघु था । ऐसे महान् मानवके आदर्श चरित्र मे मनोयोग को लगा देना और उसे प्रकाशमे लाना स्व और पर का सच्चा हित साधना है । अतएव तीर्थङ्कर ऋषभका दिव्य जीवन भले ही अगम दिखता हो, परतु निर्मल बुद्धिके द्वारा उसकी झाकी पा लेना असंभव नही है ! कहा भी है कि मृगी अपने शिशु प्रेम मे विह्वल होकर उसकी रक्षाके लिए मृगपति का सामना करने से नही डरती !

उसपर भ० ऋषभका आदर्श सामान्य मानवता तक ही सीमित नही है । उन्होने मानवता के चरमोत्कर्षमे देवत्वको मूर्तमान वनाया था । मानवका व्यक्तित्व अवश्य भौतिक है, परतु निरा भौतिक नही ' भौतिक जीवन भी चेतन पर टिका हुआ है, यदि भौतिक शरीर मे आत्मा का चैतन्यभाव न हो तो मिट्टी मोलका भी नही । और यदि उसके भीतर चेतन रह रहा है तो वह मिट्टीको भी वहुमूल्य वना देता है । कोहनूर हीरा भी तो पाषाण ही था, किंतु चेतनके प्रकाशने उस का मूल्य आँका । इसीलिए आज कोहनूर हीरा दुनियामे अपूर्व मूल्य रखता है । भ० ऋषभका जीवन जहा मानवको ज्ञानी-विज्ञानी वनकर आविष्कारो का सिरजन करने की प्रेरणा देता है जिससे मानवका ऐहिक जीवन सुखी बने, वहा ही वह उसे सयमी जीवन का भी पाठ पढाता है । मानव भोग भले ही भोगे, परंतु उनमे आसक्त न होवे । मीठा खाना बुरा नही है, परतु उसमे आसक्त होकर अधिक मीठा खा लेना अवश्य हानिकर है । इसी तथ्यके दर्शन पाठकको भ० ऋषभ के पावन चरित्रमे देखने को मिलते है । भ० ऋषभका दृष्टान्त इसवात का प्रमाण है कि भोगोमे आसक्त होना मानवता का ध्येय नही है-मानवता का ध्येय पूर्ण मानव (Perfect Man) वनना है-ऐसा पूर्ण मानव कि जिसके व्यक्तित्व मे पूर्णज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण वीर्य और पूर्ण आनन्द व्यक्त हो—जो कृतकृत्य हो और मानव का पथ-प्रदर्शन करके हित साधना जिसका सहज कर्तव्य हो । वह पूर्णमानव जीवन मुक्त परमात्मा के रूपमे इस धरातलको सुशोभित करके उसे

स्वर्ग ही बना देता है। ऐसे ही कृतकृत्य मानव 'अर्हत' कहकर पूजे जाते है। भ० ऋषभने राज्य विभूति त्यागकर इसे प्रत्यक्ष कर दिखाया था। वह सर्वज्ञ सर्वदर्शी जीवनमुक्त परमात्मा होकर चमके। मानव की इस महानता का उद्घोष एवं निखिल सत्यका निरूपण इस युगके दार्शनिक और अमेरिकन महाकवि वाल्ट विटमैन ने भी खूब ही किया है:—

> "Thou, Thou the Ideal Man,
> Fair, able, beautiful, content and Loving,
> Complete in body and dilate in spirit,
> Be Thou my god !"

निस्संदेह भ० ऋषभ ऐसेही मानव-परमात्मा थे। उनका जीवन चरित्र जाननेकी उत्सुकता किसे न होगी? इसीलिये प्रस्तुत प्रयास है।

किन्तु भ० ऋषभ मानवताके आदिकालमे हुये हैं इसलिये उनके जीवनवृत्त के विषय मे उनकी समकालीन साक्षी अप्राप्त है। फिर भी उनकी महानता प्रागैतिहासिक कालसे छनती हुई ऐसे प्रामाणिक स्रोतों से मिलती है कि हम उसपर अविश्वास नही कर सकते! सारे विश्वने भ० ऋषभ को अपना आराध्य माना। भारत ही नही, विदेशो मे भी उनकी मान्यता का आभास मिलता है, जैसे कि प्रस्तुत पुस्तक मे पाठक यथास्थान पढेंगे। वे वेद पुराण, अंग-पूर्व एवं बौद्धग्रंथो के भी उल्लेख पावेंगे। और भारतीय पुरातत्वों मे उन की छविका आभास मोहन जोदडोके कालसे देखेंगे। विदेशोमे उनकी मूर्तियां जैसी मूर्तिया, जो संभवतः उनकी ही है, दस हजार वर्षो तक की पुरानी मिली हैं। ये सब ऐसे प्रमाण है जो भ० ऋषभ के जीवन को प्रकाशमे लाते है और मानवके लिए किये गए उनके महान कार्यो का परिचय कराते है!

'ऋग्वेद' मे वृषभ अथवा ऋषभदेव का विशद वर्णन है, यद्यपि साम्प्रदायिक वातावरण मे रचे गये पुराने भाष्यो से उनका आभास नही मिलता, किन्तु डॉ० राधाकृष्णन, प्रो० वाडियर जैसे प्रकाण्ड विद्वानो ने निष्पक्ष भावसे प्रगट किया है कि वेदोमे तीर्थंकरो का उल्लेख मिलता है। वेद व्यवहृत व्यक्तियोके नामो का स्पष्टीकरण पुराण ग्रथो से करने की मान्य परम्परा यही प्रमाणित करती है कि वेदोमे प्रयुक्त ऋषभ अथवा वृषभ नाभिराजा के पुत्र ऋषभ तीर्थंकर ही हैं। उसपर जब उन ऋचाओ का वृत्त और विशेषण तीर्थंकर ऋषभके जीवन वृत्तसे ठीक बैठता है तब उसमे शङ्का करने के लिए

बहुत कम गु जाइश रहती है। प्रस्तुत पुस्तकमे यथास्थान इस प्रसग की विवेचना की गई है। यदि हम और आगे देखे तो निम्नलिखित वेदमंत्रो मे भ० वृषभ और उनके द्वारा उपदिष्ट 'पूर्व' ज्ञानका उल्लेख पाते है। 'ऋग्वेद' (१३।२।३०) पढिये:—

'इन्द्रःसुशिप्रो मघवा तरुत्रो महाव्रातस्तुविकूर्मिऋघावान् ।
यदुग्रो धा बाधितो मर्त्येपु क्वऽत्या ते वृषभ वीर्याणि ॥

'हे वृषभ, तुम्हारा वह विविध प्रकार का वीर्य कहा छिपा है जिसे तुम हम मर्त्यो मे वितरण करते हो ? तुम्ही तो इन्द्र अर्थात् आत्म-दृष्टा हो, सुशिप्र अर्थात् पूर्णज्ञानी हो, मघवा अर्थात् पूर्ण दातार हो, तरुत्रो यानी अज्ञानमय ससारसागरसे तारक हो, महाव्रात महाव्रतो के पालक हो, तुविकूर्मि अर्थात कर्मशत्रुके विजेता प्रभु हो, और ऋघावान-क्रोधादि कषायो के विध्वंशक हो।'

यह वर्णन तीर्थंकर ऋषभ के प्रति सार्थक है। भक्त उनकी शरण मे पहुचकर सुख पाने की आकाक्षा करता है क्यो कि वह 'पूर्वज्ञाता'—पूर्वो के ज्ञाता है.—

'मखस्य ते तीवषस्य प्रजूतिमियर्मि वाच मृताय भूषन् ।
इन्द्र क्षितीमामास मानुषीणां विशां दैवी नामुत पूर्वयाया ॥'

—ऋग्वेद २।३४।२

'हे आत्मदृष्टा प्रभू! परमसुख पाने के लिये मैं तेरी शरण मे आता हू, क्योकि तेरा उपदेश और वाणी पूज्य और शक्तिशाली है—उनको मैं अवधारण करता हू । हे प्रभू! सभी मनुष्यो और देवो मे तुम्ही पहले पूर्वयावा हो।'

तीर्थङ्कर ऋषभने निस्सदेह पहले-पहले पूर्वज्ञान प्रतिपादा था। निम्नलिखित वेद मत्रमे भी वृषभको पूर्वज्ञाता बताकर उनके सघको प्रश्रय दिया गया प्रतीत होता है:—

'असूत पूर्वा वृषभो ज्यायनिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः ।
दिवो न पाता विदथस्य धीभिः क्षत्र राजाना प्रदिवो दधाथे ॥५२।३८॥'

'जिस प्रकार जलसे भरा हुआ मेघ वर्षा का मुख्य स्रोत है जो पृथ्वी की प्यास को बुझा देता है, उसीप्रकार पूर्वी अर्थात् पूर्व-प्रतिपादक वृषभ महान हैं—उनका शासन वरते। उनके शासनमे ऋषि परम्परा से प्राप्त पूर्वका ज्ञान आत्माके शत्रुओ क्रोधादि का विध्वशक हो! दोनो (समारी और शुद्ध) आत्मायें अपने ही आत्मगुणो मे चमकती हैं, अतः वे ही राजा हैं—वे पूर्णज्ञान के आभास है और आत्म-पतन नही होने देते।'

निम्नलिखित 'ऋग्वेद' मंत्र (२।३८।६)में उनकी तपस्या, समव-शरण और गणधर-शिष्य का ही उल्लेख मानो किया गया है:—

'श्रीणि राजना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथःसदांसि ।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान्व्रते गन्धर्वां अपि वायुकेशान् ॥'

"दोनों ही राजा (अर्थात अन्तर्दृष्टा आत्मा और शुद्ध बुद्ध परम आत्मा) अपने त्रिरत्न ज्ञानमे सभाओ के हितमे चमकते हैं। वह सर्वथा निजज्ञानमे जागरूक, व्रतोके पालक है एव जो वायुकेश हैं उन गधर्वोसे वेष्टित रहते है। वे गधर्व (=गणधर) उनकी शिक्षाओं को अवधारण करते है। हमे उनके दर्शन प्राप्त हो।"

गन्धर्व शब्द गणधर के भावमे ही यहा प्रयुक्त हुआ है। ऐसे और भी उल्लेख है, परन्तु उनको देने की न तो आवश्यकता है और नही ही स्थान है। पाठक प्रस्तुत उल्लेखो से ही अनुमान कर सकते हैं कि भ० ऋषभका व्यक्तित्व कितना महान था ? श्रमणो के परम आराध्यपुरुष होते हुए भी वैदिक ऋषियो एव बौद्धोने भी उनका यश गान किया। धर्म-समन्वय का यह महान आदर्श है—उदाहरण है। स्वतत्र भारत की एकता के लिए निस्सदेह भ० ऋषभका आदर्श जीवन एक पावन प्रतीक है। अतः हम आशा करते है कि प्रस्तुत रचना हमारे पाठकोको एक सही रास्तेका परिचय करावेगी! यदि ऐसा हुआ, सत्यका प्रकाश फैला तो हम अपना प्रयास सफल हुआ समझेगे !

श्री अखिल विश्व जैन मिशन के साहित्य प्रकाशन विभाग का यह ध्येय है कि वह समयानुकूल प्रगतिशील साहित्यका सृजन कराये सिद्धान्त और सस्कृति दोनो ही सत्य और अहिंसाके वैज्ञानिक आलोक मे अपने यथार्थ रूप मे निखरे और चमके, जिस से जीवमात्र का कल्याण हो! इसी ध्येय की पूर्तिके लिए मिशनके प्रकाशन होते हैं और वह दातार महानुभावो के समुदार सहयोग के कारण सहज ही प्रचार मे आ जाते है। प्रस्तुत पुस्तकका प्रकाशन भी इस उदारभाव का सुफल है। मिशन दातार महोदय का अत्यन्त आभारी है !

अन्तमे हम अपने मित्र श्री कृष्णदत्त जी वाजपेयी, एम. ए., अध्यक्ष प्राचीन इतिहास और पुरातत्व विभाग, सागर विश्वविद्यालय का आभार स्वीकार करना अपना कर्तव्य समझते है। उन्होने इस पुस्तक की भूमिका लिखने की कृपा की है।

लोकमे महापुरुषो का ज्ञान प्रसरित हो और लोक का कल्याण हो, यही वृषभावना है ! इतिशम्।

अलीगज (एटा), }
१८-१०-१९५९ }

विनीत:—
कामता प्रसाद जैन

विषय-सूची

मंगलमय

आदि-तीर्थंकर प्र० ऋषभदेव !

('भक्तामर-स्तोत्र' सहित)

वन्दना



मङ्गलमय-ॠषभ-वंदना।

'स्वयंभुवा भूतहितेन भूतले, समञ्जस-ज्ञान विभूति चक्षुषा।
विराजित येन विधुन्वता तमः, क्षपा करैणेव गुणोत्करैः करैः ॥१॥

—स्वामी समन्तभद्राचार्य

हे वृषभदेव !

इस महान् पावनपूत भरतक्षेत्रके आदिकालमे जब आदिमानवने सभ्यजीवनकी अ-आ इ-ई भी न जानी थी, तब आप जन-सौभाग्य से दोज की चन्द्रमाकी भांति यहां अवतरे थे। चन्द्रमाके समान आपने अपने गुणो का विकास किया-सम्पूर्ण ज्ञानके प्रभापुंज आप स्वयं बने और जैसे चन्द्रमा अपने उत्तरोत्तर गुणोत्कर्ष-रूपी शीतल और सुखद शुभ्र-किरणोकी ज्योत्सना को धरातल पर बिखेर कर आनन्दका आलोक लोकके हितके लिए अनायास ही रच देता है ठीक, वैसे ही, हे स्वयंभू ! आपने भी भूतहितके लिये- जनमनरंजनके लिए नही बल्कि जीवमात्रका कल्याण करनेके लिए-केवल ज्ञान ज्योतिकी विभूति से प्रकाशमान नेत्र, आत्मज्ञानका आलोक लोक को दिया ! अंधेरे में उजाला हो गया ! अज्ञान-रात्रिकी तमिस्रा भाग गई ! और आत्म सम्बोधिका स्वर्ण--विहान - ज्ञानका प्रकाशमान सूर्य चमक उठा। व्यक्तिको नवस्फूर्ति प्रदायक ब्रह्मके दर्शन हुए। ज्ञान-सूर्य उगता गया-तप ताप बढ़ता गया-संयम का श्रम सुखका सोता बहाता लाया ! नरधाम स्वर्ग बन गया ! ज्ञान-विज्ञान के प्रसून खिल गए। मरताने अमरताका जामा पहना। आत्माकी स्वतंत्र-स्वाधीन-वृत्तिका जन्म

हुआ। घट-घटमे मङ्गलमय आत्माह्लादका शाश्वत निनाद झंकरित हो गया। यह था आपका माहात्म्य और वैभव।

हे प्रजापति आदिदेव।

आप मानवताके शृङ्गार हैं। आपने मानवको यत्नपूर्वक चलना सिखाया, सावधान हो खडे रहने का पाठ पढाया, उसे देखभाल कर बैठने और लेटने का शऊर दिया। अरे, आदिमानव जब क्षुधा और तृषासे व्याकुल हुआ तब आपने उसे पवित्र पानी पीना और सात्विक भोजन करने की विधि बताई। वह शिष्ट मानवो की तरह रहना और बातचीत करना भी तो नही जानता था। आपने उसे शिष्ट और सभ्य मानव बनाया—वह सज्जन बना। एक बात आपने मार्केकी बताई—आपने कहा—'श्रमकरो और पेट भरो। आलसी न बनो। आलसी प्रमाद करता और पापी होता है।' इसीलिए आपने असि-मसि-कृषि आदि जीवन कर्मों का आविष्कार किया—हल और खुरपा और न जाने कितने औजारो का आविष्कार किया—उनका ठीक प्रयोग करना सिखाया। नई-नई विद्याये और कलायें भी आपने सिरजी और सिरजी एक मानव समाज, जिसमें कर्म प्रधान था; ऊँचनीच का कोई भेदभाव न था; जो श्रेष्ट कर्म करेगा वही आदर पायेगा-जो दूसरेके हितमे अपने आपको मिटा देगा, वह पूजा जावेगा। यह आपने उदाहरण बन कर सिखा दिया। निस्सन्देह आप सच्चे अर्थ में प्रजापति थे। मानव के आराध्य आदिदेव थे।

हे वृषभ चिह्न युक्त महादेव।

आप धर्म-वृषभ थे, इसीलिए दुनिया ने आपको वृषभदेव (Bull God) कह कर पुकारा। वृषभ की भाँति आपने काम वासना को नष्ट कर दिया था—विषय वासना को जीत लिया था। मन, वचन, काय-योगो को सयत कर लिया था। इसीलिए लोक ने आपको महादेव कहा। आपने कैलाश पर तप-तप करे उसे भी पवित्र कर दिया। आप कैलाशपति बन गए। आपका अङ्ग-प्रत्यङ्ग निश्चल पर्वत-सा दिखा। भिक्षार्थ उठे तो सभी लोग स्वागत करने को दौडे, पर साधुकी आहार-विधिको कोई जानता ही न था। आहार

न मिला पूरे एक वर्ष तक, फिर भी आप निराकुल और शात थे। आपकी साधना ने संसारको हिला दिया-काया पलट दी। आपने त्रिलोक और त्रिकालदर्शी वह ज्ञान प्राप्त किया जो अपनी शान का था एक मात्र 'केवल !' आप केवली अर्हन् हो गए। आपके उपदेश-पोयूष का पानकर न जाने कितने जीव अमर हो गए। —

हे मानवता के प्रथम शिक्षक।

आप ही सर्वज्ञ-सर्वदर्शी प्रथम तीर्थङ्कर है-आपही मानवताके प्रथम शिक्षक है। आपने घूम-घूम कर उपदेश दिया-मानव को उस आदि-कालमे सत्कर्म करना सिखाया। उसे सम्बोधा और कहा—'सद्‌बुद्धिको प्राप्त करो—सम्यक्‌ज्ञानका अर्जन करो-जोवमात्रकी दया करो। यदि यह जोवन व्यर्थ गया तो फिर सम्बोधिका पाना दुर्लभ होगा। बीते दिन नही लौटेंगे और न दूसरी वार मानव जन्म पाना सुगम है। जो कभी भी हिसा नही करते, वे पापो से मुक्त और सुखी होते है।' सचमुच आप धन्य है-आप सच्चे नेता हैं-आपकी शिक्षासे मानव का कल्याण हुआ। अतः आप मङ्गल स्रोत हैं-मङ्गलमय देव है। आपकी वन्दना, आपकी अर्चना हमें सद्‌बुद्धि दे। कल्याणमस्तु !

सारा लोक इन माङ्गलिक देव की वन्दना करता है। विबुध भी करता है और सर्व सामान्य मानव भी।

शत शत वदन लोकातीत सन्त और मानव शिक्षक।

ज्ञान जिहाज बैठ गनधर से, गुन-पयोधि जिस नाहिं तरे हैं।
अमर समूह आन अवनीसो, घसि घसि सीस प्रणाम करे हैं॥
किधौ भाल-कुकर्म की रेखा, दूर करन की बुद्धि धरे हैं।
ऐसे आदिनाथ के अह-निसि, हाथ जोर हम पांव परे हैं॥

× × ×

काउसग-मुद्रा धरि वन मे, ठाडे रिषभ रिद्धि तज दीनी।
निहचल अङ्ग मेरु है मानों, दोऊ भुजा छोर जिन दीनी॥
फँसे अनन्त जंतु जग पहले, दुखी देख करुना चित लीनी।
काढन काज तिन्हें समरथ प्रभु, किधौं बांह ये दीरघ कीनी॥

× × ×

जयौ नाभिभूपाल बाल सुकुमाल सुलच्छन।
जयौ स्वर्ग-पाताल पाल, गुनमाल प्रतच्छन॥
दृग विशाल वर भाल, लाल नख चरन विरज्जहि।
रूप रसाल मराल चाल, सुन्दर लखि लज्जहि॥
रिपुजाल काल रिसहेस हम, फँसे जन्म जम्बाल-दह।
याते निकाल बेहाल अति, भो दयाल दुख टाल यह॥

—कविवर भूधरदास

अवतरण ।

'अद्य मे सफलं जन्म नेत्रे च सफले मम ।
त्वाद्राक्ष यतो देव हेतुमक्षय संपदः ॥'

हे देव ! आज मैंने अक्षय सम्पति के हेतुभूत आपके दर्शन किए। इससे मेरा जन्म सफल हो गया और दोनों नेत्र सफल होगए।'

'अद्य ससार-गंभीर पारावारः सुदुस्तर. ।
सुतरोऽय क्षणेनैव जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥'

'हे जिनेन्द्र ! आज आपका दर्शन करने से तरने के लिए अत्यन्त कठिन यह गम्भीर संसाररूपी समुद्र मेरे लिए क्षणमात्र मे सुतर हो गया।' .. ....

इन पवित्र भावों को व्यक्त करते हुए और उच्चस्वर मे जय घोषणा करके अलका और विवुध ने जिनमन्दिरमे प्रवेश किया। दोनों ने बड़ी भक्तिसे जिनेन्द्रदेवके दर्शन किए। जिन्होने रागद्वेषको जीतकर पूर्ण ज्ञानी, 'केवली' भगवानका पद पाया था, उनकी ही वीतराग मुद्रा से अङ्कित शान्तिप्रसारिनी मूर्ति के दर्शन करके उनके हर्ष का ठिकाना न था। शायद पाठक कहे कि मूर्ति तो पाषाण या धातु की होती है—उसके दर्शन करने से क्या लाभ ? परन्तु साधक भक्त निर्जीव जड़ पदार्थ के—मूर्ति के दर्शन करने नही आता। वह तो उस मूर्ति के निमित्त से अपने भगवान के दर्शन करता है—उस मूर्ति को देखते ही भक्त को अपने भगवान याद आते हैं और उनके शान्त-समता पूर्ण वीतराग भाव की छवि को

वह अपने नेत्रो के आगे पाकर वह भगवान को साक्षात पा जाने का अनुभव करता है। अलका और विबुध जब छोटे थे और जब उन्होने कलकत्ता, बम्बई जैसे बड़े नगर देखे नही थे; तब भी उनको कलकत्ता और बम्बई का सब हाल मालुम था और उनकी यह उत्कट लालसा थी कि वे कभी उन बडे नगरो को जाकर देखेंगे। कैसो आश्चर्य की बात थी यह कि जिन नगरो को उन्होने देखा नही था उनको देखने के लिए वे इतने उत्कण्ठित थे। इसका एक कारण है–निस्सदेह अलका और विबुध ने कलकत्ता और बम्बई को देखा नही था, परन्तु पाठशाला मे उनको भूगोल पढाया गया था–भारत के मानचित्र के द्वारा उन नगरो की स्थिति का परिज्ञान भी उनको कराया गया था और भूगोल की पुस्तक मे उनका जो विवरण और सुन्दर चित्र छपे थे उनको देखकर दोनो को उन नगरो का परोक्षज्ञान हो गया था। निर्जीव जड़ पदार्थ जैसे नक्शा और पुस्तक ने उनके ज्ञान-नेत्रो को खोल दिया था, जिससे वह सैकडो मील दूर बसे हुये उन नगरो का ज्ञान पा सके और उनके भीतर उन नगरो को देखने की उत्कण्ठा जागृत हुई। ठीक यही बात मूर्ति के लिए कही जा सकती है। नक़शा और अक्षर भी एक प्रकार की मूर्तिया है। लोक व्यवहार मे जैसे उनकी उपयोगिता है वैसे ही अध्यात्म क्षेत्र मे जिनेन्द्र की मूर्तियो का महत्व है। उनके दर्शन करने से भक्त को जिनेन्द्र भगवान का बोध हो जाता है।

- जब पहले-पहले अलकाने जिन दर्शन किए थे, तब उसने पूछा था–'यह कौन है ?' विबुध ने कहा–'भगवान है।' अलका ने फिर पूछा–'कौन भगवान है ?' विबुध ने बताया–'जिनेन्द्र भगवान है।' यह सुनकर उसके मनमे जिनेन्द्र भगवान का स्वरूप जानने की उत्कण्ठा उत्पन्न हो गई। मूर्ति से उसे प्रेरणा जो मिली थी। शास्त्रो का मनन करने से तत्वका बोध होता हो है और सच्चे शास्त्र स्वय जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रतिपादित होते है। उनका स्वाध्याय करके मुमुक्षु सम्यग्ज्ञान को पा लेता है। और सच्चा ज्ञान सारी सफलताओ और सिद्धियो का मूलाधार है। अतएव जिनेन्द्र भगवान मानव के महान उपकार करने वाले है, क्योकि उनके बताए हुए सच्चे

शास्त्र से ही उसे ज्ञाननेत्र मिलता है। एक प्राचीन आचार्य ने कहा भी है कि :—

'अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः ।
प्रभवति स च शास्त्रात्तस्यचोत्पत्तिराप्तात् ॥
इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धे-
र्न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥'

अर्थात् :—"मनोवांछित फल की सिद्धि का उपाय सम्यग्ज्ञान है, सम्यग्ज्ञान की उपलब्धि शास्त्र के द्वारा होती है और शास्त्र की उत्पत्ति आप्त भगवान से है, इसलिए वे आप्त भगवान (परमात्मा) जिनके प्रसाद से प्रबुद्धता की प्राप्ति होकर अभिमत फल की सिद्धि होती है, संतजनो के द्वारा पूज्य ठहरते है। सच है, साधुजन किसी के किए हुए उपकार को कभी भूलते नही है।"

निस्संदेह कृतज्ञता-ज्ञापन करना मानवका स्वभाव है। कार्लाइल ने भी बताया है कि वीर पूजा का उद्गम मानवता की इस कृतज्ञता-ज्ञापन रूप प्रकृति का ऋणी है। आदि मानव ने अपने पूर्वजों का उपकार माना और उनकी स्मृति मे निषधिकायें बनाई। 'आदि पुराण' मे श्री जिनसेनाचार्य ने बताया है कि कर्मभूमि की आदि मे जब भ० ऋषभदेव सर्वज्ञ सर्वदर्शी पहले तीर्थङ्कर हुये तो सम्राट् भरत ने उनकी पवित्र स्मृति को ताजा रखने के लिए उनकी आकृतियाँ बनवाई थी, जो अयोध्या के प्रमुखद्वारो पर अङ्कित थी। प्रजाजन आते जाते उनका अभिवादन करते थे। भ० ऋषभ ने उनको सभ्यजीवन का पाठ जो पढ़ाया था और धर्मतीर्थ की स्थापना की थी। उनके पश्चात् काल क्रम से अवशेष २३ तीर्थङ्करों ने भी धर्म तत्वका उपदेश प्राणियो को दिया था। वे सभी राग-द्वेषादि दुर्गुणो को जीतने के कारण 'जिनेन्द्र' कहलाते थे। शास्त्र का स्वाध्याय करने से विबुध और अलका को इसका परिज्ञान हो गया था। वे जिनेन्द्र भगवान् के प्रति कृतज्ञताज्ञापन करने के लिये सदैव सावधान रहते थे। भक्ति प्रदर्शन के निमित्त से वे आत्मदर्शन करने मे भी सफलमनोरथ होते थे।

आत्मदर्शन आत्म-प्रतीति का ही दूसरा नाम है। अपने

आत्मस्वरूप को जान लेना सम्यक् श्रद्धा को पा लेना है। व्यक्ति जबतक अपने यथार्थ स्वरूप को नही जान लेता तबतक वह अज्ञानांधकार में पड़ा रहता है और अपनी अनन्त आत्मशक्ति से बेखबर रहता है। ऐसा व्यक्ति शरीर और आत्मा के भेद को नहीं जानता। उसको यह बोध ही नही होता कि यह शरीर शाश्वत नहीं है–यह पार्थिव है और एक दिन उसका साथ छोड़ देगा। भौतिकवादी लोग पार्थिव शरीर (Physical body) को 'आपा' मानने की गलती करते हैं। इसलिए वे 'बहिरात्मा' कहे गये हैं–उनकी बहिर्दृष्टि है–वे अनात्मवादी हैं–अन्तर्दृष्टा नहीं हैं। इसलिए ही उनके कारण लोक में अशांति बढती है। इसके विपरीत जो शरीर और आत्मा को भिन्न मानते और जानते है कि शरीर जड़ है और आत्मा ज्ञान-दर्शन का चैतन्यतत्व है, वे सच्चे आत्मवादी हैं। ज्ञानियो ने उन्हें 'अन्तरात्मा' के नाम से पुकारा है। वे सचमुच आत्मदृष्टा ही होते हैं। शतावधानी कवि रायचन्द्र जी ने आत्मा का दर्शन वर्तमान के साथ २ भूत और भविष्यत काल में भी किया था। अपने पूर्वभवो का स्मरण उनको छोटी-सी उम्र में ही हो गया था। अमेरिका में एक बालक फिलिप है जो क्षयोपशम विशेष से आपा-परके भेद को जानता है। वह अपने शरीर को आपा नहीं कहता, बल्कि 'फिलिपका शरीर' कहता है। यह पूर्वजन्म के अच्छे संस्कारो का ही परिणाम है। आत्म श्रद्धा जग जाने पर मनुष्य की काया पलट हो जाती है। वह अपने लिए ही नही जीता, बल्कि अपना और पराया हित साधकर स्वयं जीवित रहने और दूसरो को जीवित रहते देने में उसे आनन्द आता है। 'जीयो और जीने दो' के समुदार जीवन सिद्धान्त का पालन करके वह एक आदर्श विश्व नागरिक बनता है–सारे वसुधा के जीवो से उसकी मैत्री होती है। आत्मा की अनन्त शक्ति पर विश्वास होने के कारण वह जीवन में सफल होता हुआ आगे बढता है। वह महान् अन्तर्दृष्टा जो है! इस प्रकार आत्मवादी बनने से मानव के सम्मुख अनन्त शक्तियों का द्वार खुल जाता है और सफलतायें उसके पैर चूमती हैं। किन्तु वह वासना से ऊपर उठ जाता और इच्छाओ को जीतने में उसे

म्रानन्द म्राता है। उसके भीतर मे विभाव-भाव तिरोहित होता जाता है। भौतिक शरीर म्रौर मन पर उसकी म्रात्मा (Spirit) का शासन चलता है।

ऐसा म्रध्यात्मवादी पुरुष मानवता का शृङ्गार बनता है। वह ससार मे रहता है परंतु सासारिक रगरेलियों से म्रलिप्त। ठीक वैसे ही जैसे कमल सरोवर से म्रलग रहता है। वह समझ लेता है कि गृहस्थी के मोहजन्य सम्बन्धी बन्धन ही बन्धन हैं—उनसे कर्ममलका बोझ बढ़ता है म्रौर म्रात्मा ऊपर को न उठकर नीचे की म्रोर को जाता है। म्रतएव वह मोह बन्धनो को तोड़कर एकल विहारी बनता है। साधु होकर साधना में लग जाता है। समताभाव के म्रमृत से विषमता रूपी विष को मिटा देता है। ध्यान की म्रग्नि मे कर्म-पटलो को जला देता है। तब एक दिन वह म्रतरात्मा दुनियां में परमात्मा बनकर चमकता है। वह जीवन-मुक्त परमात्मा होकर महामानव बनता है—इसी जीवन में केवलज्ञान म्रौर पूर्ण सुखका म्रानंद लेता है म्रौर खूबी यह कि उस ज्ञान म्रौर सुख को दुनियां के लोगो में बांट देता है। वह 'जिनेन्द्र भगवान' लोकपूज्य बनता है क्योकि वह सबके लिए म्रभयधाम होता है। उसके पास पहुँचकर वैरी म्रपना वैर भूल जाते है म्रौर प्रेम की गंगा में डुबकियां लगाते हैं। जिनेन्द्र ज्ञान सूर्य होकर चमकते हैं। सबही प्राणियों का म्रज्ञान उनकी दिव्य वाणी से धुल जाता है। वह तरन-तारन होते हैं—वह स्वयं तरते है म्रौर दूसरो को भी दुखसागर से पार ले जाते हैं। वह जीवों के सच्चे उपकारी है। उनके उपकार को मानव भूला नहीं है। इसीलिए मानव ने जिनेन्द्र को म्रपना म्राराध्य माना है म्रौर उनके दर्शन म्रौर पूजन को सफलता की कुंजी।

किंतु इस विषम समय में मानव इतना भाग्यहीन हो गया है-उसने इतनी म्रधिक हिंसा बढा ली है कि म्राज एक भी जीते जागते जिनेद्र भगवान के दर्शन नहीं होते। समय म्राएगा तब उनके दर्शन होगे म्रौर जहाँ उपयुक्त समय है वहाँ म्रब भी उनका कल्याणकारी दर्शन होता है। उनकी म्रनुपस्थिति मे उनकी वीतराग मुद्राङ्कित मूर्ति द्वारा उनके दर्शन करके मानव ज्ञान म्रौर उत्साह की प्रेरणा

लेता आया है। मूर्ति मे कला का अवतरण करके–सत्यं शिवं सुंदरम् की प्राण-प्रतिष्ठा करके मानव ने उसमे सजीव चैतन्य जैसा भाव जगाने की क्षमता भर दी है। यदि यह बात न होती तो वह पत्थर पूजा हो जाती और उससे मानव का कोई हित नही सधता। इसी कारण उर्दू के कवि शेख सा० को भी कहना पड़ा और उन्होने खूब ही कहा है, —

'उसमें है एक खुदाई का जलवा वगरना शेख।
सिजदा करें से फायदा पत्थर के सामने ?'

अर्थात्—'परमात्मा की उस मूर्ति में खुदाई का जलवा–परमात्मा का प्रकाश और ईश्वर का भाव मौजूद है; जिसकी वजह से उसे सिजदा अर्थात् प्रणामादिक किया जाता है; अन्यथा, पत्थर के सामने सिजदा करने से कोई लाभ नही था।'

वास्तव मे जिनेन्द्र परमात्मा की मूर्ति के दर्शन और प्रणाम आदि करना मात्र परमात्मा के गुणो का स्मरण करके साक्षात उनको ही प्रणामादिक करना है–धातु, पाषाण की मूर्तियो को प्रणाम करना नही है। इसलिये उसमे प्रेरणा का रहस्य भरा हुआ है। लन्दन के ट्राफलगर स्क्वायर मे एडमिरल नेलसन की मूर्ति के आगे प्रतिवर्ष उस दिन सभी अंग्रेज इकट्ठे होकर उसकी वन्दना करते हैं जिस दिन उसने फ्रेन्चो पर विजय पाई थी। इस क्रिया द्वारा अंग्रेज युवक अच्छे नाविक बनने की प्रेरणा उस मूर्ति से लेते हैं और लोक प्रसिद्ध नाविक बने हुए हैं। यह एक बड़ा लाभ है जो अन्यथा अप्राप्य ही समझिये।

जैनो का आदर्श वीतराग विज्ञानता है-समता, शांति, सुख आदि गुणो को जगा लेना है, अतः जैन मूर्तियो मे ये ही भाव स्पष्ट रूप से झलकते हैं। परमात्मा के उन गुणो का चिन्तवन करके ही जैनी मूर्ति को आगे रखकर भ० जिनेन्द्र की उपासना करते है। उस समय भक्त-हृदय भ० जिनेन्द्र का साक्षात् अवतरण उस मूर्ति में हुआ अनुभव करता है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण जी ने भी यह बात निम्नलिखित पद्य मे व्यक्त की है :—

'पूजते हैं भक्त क्या प्रभु-मूर्ति को जड़ जानके ?
अज्ञजन उसको भले ही जड कहें अज्ञान से।
देखते भगवान को धीमान उसमें ध्यान से ॥'

अलका और विबुध को उनके माता पिता ने बचपन से ही जिनदर्शन का महत्व बता दिया था। इसलिए उनके हृदयो में दृढ़ श्रद्धान जम गया था कि जिनदर्शन करने से पाप मल धुल जाता है और इष्ट की सिद्धि होती है। वह नियमित रूप से प्रतिदिन जिन-दर्शन किया करते थे। एक दिन अलका को लगा कि 'भगवान के दर्शन करने तो प्रतिदिन आते है, परंतु ये कुछ देते-दिलाते नही है! यहा 'परशाद' के दो बतासे भी नही मिलते।' और मन की यह बात उसने विबुध से कह डाली। विबुध मुस्करा कर बोला—'अलका! तू बड़ी भोली है। इतने दिन तुझे जिनदर्शन करते हो गये पर तू ने भगवान को पहिचाना नही—उनके स्वरूप को जाना नही!' अलकाने धीमे स्वर में कहा—'ऐसी बात तो नही?' विबुध बोला—'ऐसी बात नही तो इस सत्य को क्यो भूल रही है कि प्रत्येक जीव स्वाधीन है। वह अपने ही पुरुषार्थ से इच्छित कार्य की सिद्धि कर सकता है। अतः जिनदर्शन का सत्पुरुषार्थ करके व्यक्ति अपने आत्म-बल को जगाता है। इन मूर्तियो को देखते ही हमे सुखशांति मिलती है और भगवान् का पतित पावन जीवन हमारे नेत्रो के आगे नाचने लगता है, जिससे हमारे भाव शुभ और पवित्र होते हैं और हम उनसे प्रेरणा लेकर उत्साह से आगे बढते है। शुभ भावो से हमारा भावी जीवन सुखमय बनता है। यह कितना बडा लाभ है—कितना अच्छा प्रसाद है। आचार्य म० ने जिन मूर्तियों के इस मूक प्रसाद-वितरण की शक्ति को पहले ही बता दिया है:—

> 'कथयन्ति कषाय मुक्ति लक्ष्मीं,
> परया शांततया भवान्तकानाम्।
> प्रणमामि विशुद्धये जिनानां,
> प्रति रूपाण्यभिरूपमूर्तिमंति॥

अर्थात्—"संसार से मुक्त श्री जिनेन्द्रदेव की उन तदाकार सुन्दर मूर्तियो को मैं, अपनी आत्मशुद्धि के लिए, प्रणाम करता हू। जो कि अपनी परम शान्तता के द्वारा ससारी जीवो को कषायों की मुक्ति का उपदेश देती हैं।"

वीतराग भाव उन मूर्तियो मे ओत प्रोत है। चाहे गरमी हो, चाहे सर्दी, चाहे दीपक जलता हो या अंधेरा हो, चाहे कोई पूजा-

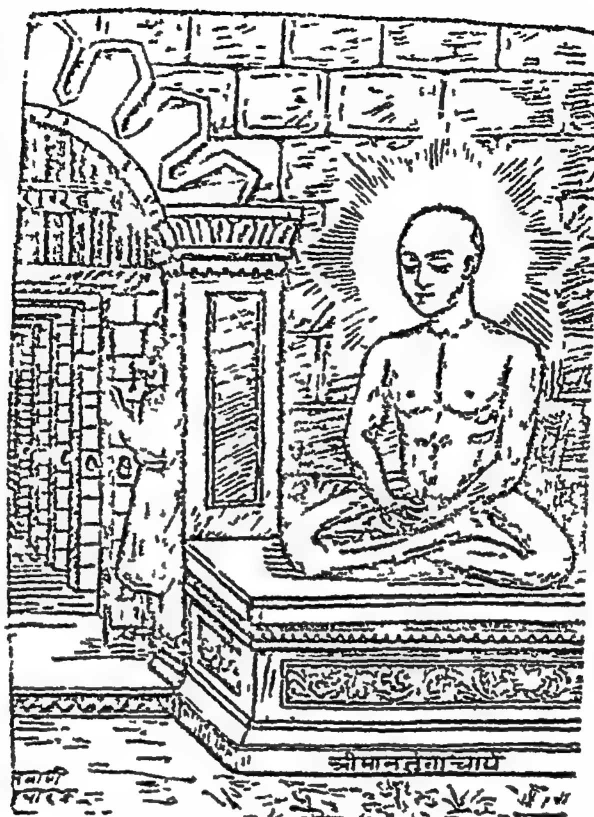
स्तुति करे या न करे-इन मूर्तियो को ठीक वैसे ही कोई प्रयोजन नही जैसे कि जिनेन्द्र भगवान को नही था। सचेतन जिनेन्द्र भी तो इन मूर्तियो की तरह ही अचल ध्यान मे लीन और वीतराग भाव की आभा से दैदीप्यमान हुये गंधकुटी मे विराजते थे। भक्त गाये और पूजा करें या न करें, उनको कोई हर्ष विषाद नही। वह तो प्रेरणा के स्रोत थे और वीतराग विज्ञान के जोते जागते उदाहरण थे। स्वामी समन्तभद्राचार्य जी ने भ० जिनेन्द्र के दर्शन इसी रूप में किए और वे बोले :—

'न पूजार्थस्त्वयि वीतरागे,
न निन्दया नाथ विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्न.,
पुनातु चित्तं दुरिता जनेभ्यः॥'

अर्थात्—'हे भगवन्! पूजाभक्ति से आपका कोई प्रयोजन नही है, क्योंकि आप वीतरागी हैं, रागका अंश भी आपके आत्मामे विद्यमान नही है, जिसके कारण किसी की पूजा भक्ति से आप प्रसन्न होते। इसी तरह निन्दा से भी आपका कोई प्रयोजन नही है, क्योंकि आपको आत्मा से वैरभाव बिल्कुल निकल गया है। ऐसी हालत मे निन्दा और स्तुति दोनो ही आपके लिए समान हैं, फिर भी आपके पुण्यगुणो के स्मरण से हमारा चित्त पापो से पवित्र हो जाता है। इसीलिए हम आपकी उपासना करते हैं।'

विवुध की चरचा से अलका का मन ज्ञान से आलोकित होगया था। वह जिन दर्शन करके समझती कि उसे अनन्त लाभ की प्राप्ति हुई है। उस दिन जब वह दर्शन करके सभा मंडप मे से निकली तो उसकी दृष्टि आचार्य मानतुङ्ग के चित्र पर अटक गई। विवुध से उसने उनके विषय में पूछा तो विवुध ने बताया कि यह वही आचार्य है जिन्होने 'भक्तामर स्तोत्र' रचकर ४८ तालो का बंधन तोड़ दिया था। अलका ने कौतूहल से कहा-'भाई, इनकी रोचक कथा कभी मुझे भी बताना। विवुध खुशी से बोला—'हां, हां, इनकी पुण्य-कथा का अवतरण अवश्य करूंगा।' और दोनो जय-जय कहते हुए मंदिर के बाहर चले गए।

योगिराट् श्री मानतुंगाचार्य



मुनि मानतुङ्ग को किया तालो मे जभी बन्द।
आदीश की सस्तुति मे रचे भक्ति भरे छन्द॥
तत्काल ताले टूट गए खुले सब यों द्वार।
विस्मित सभी थे देख अद्भुत भक्ति-चमत्कार॥

एवं भक्ति का चमत्कार

योगिराट् मानतुंगाचार्य और भक्ति का चमत्कार

विबुध ने देखा अलका योगिराट् मानतुङ्गाचार्य के चित्र को भूली नही है। अत उसकी उत्कण्ठा को शमन करने के लिए विबुध ने उन महान् आचार्य का माहात्म्य उसे बताया।

विबुध ने कहा ईस्वी ११ वी-१२ वी शताब्दि मे मालव देश का परमार राजवश अपने शौर्य, विक्रम और विद्या के लिये प्रसिद्ध था। धारा नगरी उनकी राजधानी थी। इन राजाओं में राजा भोज अपने अनेक गुणो के कारण लोक प्रसिद्ध था। वह एक महान् वीर और पराक्रमी शासक तो था ही परन्तु उससे भी अधिक वह स्वय एक लब्ध-प्रतिष्ठित विद्वान् था और विद्वानो का आदर करने के लिए लोक मे अद्वितीय गुणग्राहक माना जाता था। विद्वज्जनों की वाणी पर मुग्ध होकर वह उनका अपूर्व सत्कार करता और उनको खूब दान देता। इतना ही नही वह हृदय से विवेकी भी था। लक्ष्मी की चचलता और जीवन की क्षणभंगुरता उसके निकट मात्र काव्यकौशल की कड़ियाँ न होकर सत्य की अनुभव-पंखड़िया थी। वह उनको असारता को सार रूप देना चाहता था। इसीलिये राजा भोज ने यह नियम कर लिया कि प्रतिदिन सवेरे ही सवेरे दानमण्डप मे बैठकर यथेच्छ सुवर्ण टंको (मोहरो) का दान याचको को दिया करता। उनको इस उदार वृत्ति को देखकर मन्त्रिगण परेशान हो गये-उनको भय हुआ कि इस

तरह तो सारा राजकोष रीता हो जावेगा और फिर राजप्रबंध कैसे चलेगा ? रोहक नाम के मन्त्री ने और कोई उपाय न देख कर एक दिन सभामण्डप के भारपट्ट पर खड़ियामे निम्नलिखित वाक्य लिख दिया.

'आपत्तिकाल के लिये धन को बचाकर रखना चाहिए।'

दूसरेदिन जब राजा भोज सभामे आये तो उन्होने वह वाक्य पढा और पढकर मुस्करा दिये। मनमें उन्होने मन्त्रियोका सूझबूझ को सराहा। मन्त्रियो का प्रमुख कर्तव्य ही यह है कि राज्य को कुशलक्षेम और वृद्धि के लिए राजा को सत्परामर्श दिया करें। किंतु भोज तो महान् थे-वह आपत्ति से डरते ही क्यो ? उन्होने उसके साथ लिख दिया:-

'भाग्यवान् को आपत्ति कहाँ है ?'

मन्त्री ने यह वाक्य पढा तो उन्होने सोचा कि राजा बहुत ही भावुक है, दानशीलता की भावुक-बाढ मे व्यवहार को भूल रहा है। अत उसके जवाब में मन्त्री ने लिख दिया —

'कभी दैव कुपित हो जाय तो ?'

राजा भोजने जब यह वाक्य पढा तो उनको व्यवहार कुशल मंत्री की बुद्धि पर तरस आया-उनको लगा मन्त्री सत्य को-वस्तुस्वरूप को पहिचानने में असमर्थ है। और उन्होने यह वाक्य लिख दिया —

"तब तो सञ्चित श्री विनष्ट हो जायगा।"

मन्त्री ने अपनी भूल को समझा और भोज की महानतासे उसका रोम-रोम उल्लसित होगया। ऐसे थे वह भोज जो गुणग्राहकताके लिए आजतक प्रसिद्ध है। कहते है कि उन्होने एक शासन-पत्र निकाल कर ५०० पंडितो को राज-सभामे रहने की सुव्यवस्था कर दी थी। और उनके जीवन निर्वाह के लिये राज्य की ओर से स्थायी ग्रास का प्रबंध भी कर दिया था। वह कहते थे कि मेरे मनरूपी हाथी को ज्ञानरूपी अंकुश से वश में रखने के लिए ज्ञानवान पंडितजनो का सामीप्य मुझे अभीष्ट है। यही कारण है कि उनको राजसभा मे बड़े, बड़े ज्ञानी पुरुष और विद्वान् मौजूद थे। उनमे कई जैन पंडित और आचार्य थे। कुलचन्द्र नामक जैन उनके सेनापति थे। कवि धनपाल भी जैन थे। और भी अनेक कवि थे।

राजा भोज विद्या-रसिक होने के साथ ही ज्ञानी धर्मात्मा भी थे।

उनके समय में मंत्रवाद का प्रावल्य था। अतः उन्हे तांत्रिक चमत्कार देखने की उत्कण्ठा रहती थी, यद्यपि धर्माराधना के लिए वैसे चमत्कार कुछ मूल्य नही रखते। राजा भोज की चर्चा वार्ता जैन विद्वानो से भी होती रहती थी। कवि धनपाल भी उनके प्रिय पात्रोमे से थे। वह अक्सर राजाके साथ रहा करते थे। एक दिन राज भोज कवि धनपाल को साथ मे लेकर आखेट के लिए गये और अपने वाण से हिरण को वेधने लगे। इस पर कविवर ने कहा:—

'इस तरह का पौरुष रसातल को चला जाय। यह कुनीति है कि निर्दोष और शरणागत को मारा जाय। वलवान् भी जब दुर्बल को मारते है तो वह यह बड़े दुख की बात है। जगत् अराजक होगया है।'

राजा इस निर्भत्सना को सुनकर क्रुद्ध होगया और पूंछा कि धनपाल ने ऐसा क्यो कहा? उत्तर में निशङ्क धर्मधीर धनपाल ने कहा, "प्राणान्त का अवसर उपस्थित होने पर कदाचित मुँह मे तृण रखकर सम्मुख आये, तो वैरी भी छोड दिया जाता है, तो फिर ये पशु तो सदा तृण ही खाकर जीते रहते है—इनके मुँह में सदा तृण रहता है, इन्हें क्यों मारा जाता है?" राजा भोज ने जब यह तर्क वार्ता सुनी तो उसका विवेक जग उठा और उसने आजन्म मृगया का त्याग कर दिया। ऐसे ही प्रसगो के द्वारा जैन विद्वान् उनको सन्मार्ग की ओर लाते थे।

एक दिन राजा भोज की सभा में विद्वज्जन बैठे हुये ज्ञान चर्चा कर रहे थे। प्रसङ्गवश योगी महात्माओ के चमत्कारो की बात चल पड़ी। मयूर नामक एक तांत्रिक ने कहा कि 'मैंने तो सिर काट कर पुनः जोड़ देने का चमत्कार कर दिखाया।' वस्तु-स्वरूप से अनभिज्ञ लोग इन चमत्कारो को देख सुनकर विस्मित हो, तो आश्चर्य नही। उस दिन राजसभा में जैनाचार्य श्री मानतुङ्ग स्वामी भी विराजमान थे। मूलसंघ के वह महान् योगी थे। राजा भोजने उनका मत भी इस विषयमे जानना चाहा। वह बोले-"राजन्! चमत्कारो का होना और न होना धर्म से कुछ भी सम्बन्ध नही रखता, क्योकि इन्द्रजाल विद्या का ज्ञाता भी अद्भुत क्रियाएँ करके दिखा देता है। धर्म का लक्षण तो दया है, जिसका परिणाम सर्व भूत में ब्रह्मरूप आत्मा के

प्रभावना का माध्यम बनाना उचित समझा। उन्होंने कहा, 'हे राजन् उपस्थित जनो को वाणी की अमोघ शक्ति में संशय है, क्योंकि आत्म स्वरूप के ज्ञान से लोक वञ्चित हो रहा है। आज मुझे आत्मभावना के अतुल बल से अनुरंजित वाणी की शक्ति का प्रदर्शन करना अभीष्ट है। आप चाहते हैं तो मुझे अडतालीस तालो मे बंद कर दीजिए और बन्दी बना दीजिए और फिर देखिए वाणी का चमत्कार!' लोगो ने समझा यह साधु कोरी बातें बनाता है; किंतु जैनाचार्य ने जो कहा वह प्रत्यक्ष कर दिखाया!

राजा भोजने आज्ञा दी और श्री मानतुङ्गाचार्य अडतालीस तालो में बन्द कर दिये गये। राजा और दरबारी सब देखते रहे। वह आत्मध्यान में लीन हो गये। उन्होंने प्रथम तीर्थंकर आदि भगवान ऋषभ को अपना आराध्य माना और उनकी भक्ति में तल्लीन होकर अपनी छद्मस्थ आत्मा को उनकी शुद्धात्मा के आदर्श रूप-जल में डुबो दिया। परिणाम यह हुआ कि सुषुप्त आत्मशक्ति विकसित हो गई और वह स्वामी मानतुङ्गाचार्य की वाणी पर थिरकने लगी। उन्हो ने चित्तकी एकाग्रता के साथ भगवान् आदिनाथ का स्मरण करके स्तोत्र के पहले दो श्लोक रचकर उच्च स्वर से पढे —

'भक्तामर प्रणति मौलि मणि प्रभाणा
मुद्योतकं दलित पापतमोवितानम्।
सम्यक्प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥१॥
य संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा-
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्त हरै रुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि त प्रथम जिनेंद्रम्॥२॥ (युग्मम्)

इन श्लोको का पढना था कि आत्मा की अनन्त शक्ति का चमत्कार देखकर सभी उपस्थित जनसमुदाय दंग रह गया-वाणी में विद्युत से भी अधिक आकर्षण और प्रभाव था। वाणी के कणो ने जादू का काम किया। राजा भोज ने देखा और सभी लोगो ने देखा कि ताले अपने आप खुल कर गिर पड़े है। राजा ने आश्चर्य से आखे

मलो और गौर से देखा-सचमुच ताले खुलकर धूल चाट रहे थे। आगे जैसे जैसे आचार्य महाराज स्तोत्र पढते जाते थे ताले टूट टूट कर स्वत गिरते जाते थे। परवादी देख देखकर हैरान हो रहे थे। यह था एक जैन योगी का अद्भुत चमत्कार! देखते ही देखते अडतालीस ही ताले खुल गये और भ० आदिनाथ स्तोत्र के ४८ श्लोक भी रच गये। केवल हाथो मे हथकडिया शेष रह गई। श्री मानतुङ्गाचार्य रुके और राजा भोज से वोले, "राजन्! देखा वाणी का चमत्कार! अव यह हथकडिया शेष है। इन दरवारियो में किसी की सामर्थ्य हो तो इनको फूक मारकर खोल दे।"

राजा ने अर्थ भरे नेत्रो से दरवारियो की ओर देखा। एक क्षण वीता, दो क्षण वीते, किंतु किसी का साहस न हुआ कि फूक मारकर हथकडिया खोल देता! यह देखकर भगवन् मानतुङ्गाचार्य ने यह चमत्कार भी कर दिखाया-फूंक मारते ही हथकडिया खुल गईं। सभी ने जय जयकार किया। राजा भोज योगी का चमत्कार देखकर उनके चरणो में आ गिरा और उसी दिन से अहिंसा धर्म का पालन दृढता से करने लगा। वडे वड़े जैन मुनियो और आचार्यों की सत्सङ्गति करने में उसे आनन्द आता था। दक्षिणावर्ती दिगम्बर जैन सघ के प्रसिद्ध आचार्य प्रभाचन्द्र का उसने विशेष रूप से सम्मान किया था। यह है अलका, स्वामी मानतुङ्गाचार्य का आख्यान। चित्र में यही दृश्य अङ्कित किया गया है।"

यह सुनकर अलका वहुत ही चकित और प्रभावित हुई। कुछ रुककर वोली- 'योगियो की वातें कुछ समझ मे नही आती-उनके सभी कार्य अलौकिक होते है।" विवुध यह सुनकर मुस्कराया और बोला 'ठीक कहती हो, अलका, क्योंकि साधु जीवन की वारीकियो से तुम वाकिफ नही हो और आत्मा की अनन्तशक्ति तुम्हारे मन पर चढी नही है। किंतु एक वात मैं तुम्हें वता चुका हूँ और वह है योगियो का तेज-प्रभाव! प्रत्येक प्राणी मे यह आकर्षण का प्रभाव तैजस नामक सूक्ष्म शरीर के कारण विद्यमान है, परन्तु योगीजन उसका विकास प्रखर रूप मे कर लेते है और उसके द्वारा सामान्यतया ऐसे अद्भुत कार्य कर जाते है जिनको लोग चमत्कार कहते हैं। आधुनिक मनो-

विज्ञानी भी इस तथ्य को स्वीकार करते है। वह भी कहते है कि "हर एक मनुष्य के अन्दर व चहुँओर एक वहते हुये सूक्ष्म पदार्थ का घेरा रहता है। यह घेरा साधारण मनुष्य के दो फुट हर तरफ रहता है और इसका आलोक अण्डाकार होता है। सिर्फ मनुष्यो के ही नहीं परन्तु पशु वनस्पति इत्यादि समस्त प्राणिमात्र के भीतर-बाहर यह आलोक व्याप्त रहता है। ...इसी पदार्थ (तैजस प्रभामंडल) के कारण आकर्षण-विकर्षण होते है। इसी तत्वके कारण एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। इसी के द्वारा एक स्थान से दूरस्थ पुरुष के पास विचार भेजे जा सकते है। इसी से एक स्थान वाला दूसरे स्थान वाले का उपचार कर सकता है। इसके बुरे रूप से बुराइयो और बीमारियो एवं आपत्तियो की बाढ़ आती है और इसी के अच्छा होने से शांति और सुखका साम्राज्य व्याप्त होता है।" ("सरस्वती," भाग २९पृ० ६१७-६१८) इस मानवीय तेजको personal Magnetism (वैयक्तिक विद्युताकर्षण) और प्रभामंडल को Auora कहते हैं। तप योग की साधना से साधुओं में इसका उत्तरोत्तर विकास होजाता है। इस युग के आदि मे आदि भगवान ऋषभदेव के व्यक्तित्व में इसका पूर्ण विकास हुआ था। उनका प्रभामंडल सहस्राधिक सूर्यो से भी अधिक प्रभावशाली था। इसीलिए मानतुङ्गाचार्यजी ने उन भगवान् को आदर्श मानकर उनकी भक्ति के मिसमे अपने आत्म-तेज को विकसित किया था। और ऐसा चमत्कारी स्तोत्र रचा कि जिसके एक-एक वाक्य में शक्ति भरी हुई है। भगवन् मानतुङ्गके साथ उनका 'भक्तामर स्तोत्र' अमर हो गया है। उसमें सर्व कल्याण की शक्ति और क्षेम भावना भरी हुई है।"

अलका ने हर्ष से कहा-"निस्सन्देह यही बात है भाई! इसीलिए मैं तो उसका पाठ नित्यनियम से करती हूं।" विबुध बोला- 'उसका पाठ विघ्नहर और शक्तिदा है, इसलिये प्रत्येक जिनेन्द्रभक्त उसका पाठ करता है।'

अलका बहुत ही प्रसन्न थी। कुछ देर सोचकर बोली-"एक उपकार और करो भाई।" विबुध ने पूंछा-'क्या!" अलका बोली- "आदिभगवान् ऋषभ का पावन चरित्र मुझे बताओ!" यह सुनकर

मली और गौर से देखा-सचमुच ताले खुलकर धूल चाट रहे थे। आगे जैसे जैसे आचार्य महाराज स्तोत्र पढ़ते जाते थे ताले टूट टूट कर स्वत. गिरते जाते थे। परवादी देख देखकर हैरान हो रहे थे। यह था एक जैन योगी का अद्भुत चमत्कार ! देखते ही देखते अडतालीस ही ताले खुल गये और भ० आदिनाथ स्तोत्र के ४८ श्लोक भी रच गये। केवल हाथो में हथकड़िया शेष रह गई। श्री मानतुङ्गाचार्य रुके और राजा भोज से बोले, "राजन् ! देखा वाणी का चमत्कार ! अब यह हथकडिया शेष है। इन दरबारियो में किसी की सामर्थ्य हो तो इनको फूक मारकर खोल दे।"

राजा ने अर्थ भरे नेत्रो से दरबारियो की ओर देखा। एक क्षण बीता, दो क्षण वीते, किन्तु किसी का साहस न हुआ कि फूक मारकर हथकड़िया खोल देता। यह देखकर भगवन् मानतुङ्गाचार्य ने यह चमत्कार भी कर दिखाया-फूंक मारते ही हथकड़िया खुल गई। सभी ने जय जयकार किया। राजा भोज योगी का चमत्कार देखकर उनके चरणो में आ गिरा और उसी दिन से अहिंसा धर्म का पालन दृढता से करने लगा। वडे वडे जैन मुनियो और आचार्यों की सत्सङ्गति करने में उसे आनन्द आता था। दक्षिणावर्ती दिगम्बर जैन सघ के प्रसिद्ध आचार्य प्रभाचन्द्र का उसने विशेप रूप से सम्मान किया था। यह है अलका, स्वामी मानतुङ्गाचार्य का आख्यान। चित्र में यही दृश्य अङ्कित किया गया है।"

यह सुनकर अलका बहुत ही चकित और प्रभावित हुई। कुछ रुककर बोली- 'योगियो की बातें कुछ समझ मे नही आती-उनके सभी कार्य अलौकिक होते है।" विवुध यह सुनकर मुस्कराया और बोला 'ठीक कहती हो, अलका, क्योकि साधु जीवन की बारीकियो से तुम वाकिफ नहीं हो और आत्मा की अनन्तशक्ति तुम्हारे मन पर चढी नही है। किन्तु एक वात मैं तुम्हें बता चुका हूँ और वह है योगियो का तेज-प्रभाव ! प्रत्येक प्राणी मे यह आकर्षण का प्रभाव तैजस नामक सूक्ष्म शरीर के कारण विद्यमान है, परन्तु योगीजन उसका विकास प्रगट रूप में कर लेते है और उसके द्वारा सामान्यतया ऐसे अद्भुत कार्य कर जाते हैं जिनको लोग चमत्कार कहते हैं। आधुनिक मनो-

विज्ञानी भी इस तथ्य को स्वीकार करते है। वह भी कहते है कि "हर एक मनुष्य के अन्दर व चहुँओर एक बहते हुये सूक्ष्म पदार्थ का घेरा रहता है। यह घेरा साधारण मनुष्य के दो फुट हर तरफ रहता है और इसका आलोक अण्डाकार होता है। सिर्फ मनुष्यो के ही नही परन्तु पशु वनस्पति इत्यादि समस्त प्राणिमात्र के भीतर-बाहर यह आलोक व्याप्त रहता है। ···इसी पदार्थ (तैजस प्रभामडल) के कारण आकर्षण-विकर्षण होते है। इसी तत्वके कारण एक का दूसरे पर प्रभाव पडता है। इसी के द्वारा एक स्थान से दूरस्थ पुरुष के पास विचार भेजे जा सकते है। इसी से एक स्थान वाला दूसरे स्थान वाले का उपचार कर सकता है। इसके बुरे रूप से बुराइयो और बीमारियो एव आपत्तियो की बाढ़ आती है और इसी के अच्छा होने से शाति और सुखका साम्राज्य व्याप्त होता है।" ("सरस्वती," भाग २६ पृ० ६१७-६१८) इस मानवीय तेजको personal Magnetism (वैयक्तिक विद्युताकर्षण) और प्रभामडल को Auora कहते हैं। तप योग की साधना से साधुओ मे इसका उत्तरोत्तर विकास होजाता है। इस युग के आदि मे आदि भगवान ऋषभदेव के व्यक्तित्व मे इसका पूर्ण विकास हुआ था। उनका प्रभामडल सहस्राधिक सूर्यो से भी अधिक प्रभावशाली था। इसीलिए मानतुङ्गाचार्यजी ने उन भगवान् को आदर्श मानकर उनकी भक्ति के मिससे अपने आत्म-तेज को विकसित किया था। और ऐसा चमत्कारी स्तोत्र रचा कि जिसके एक-एक वाक्य मे शक्ति भरी हुई है। भगवन् मानतुङ्गके साथ उनका 'भक्तामर स्तोत्र' अमर हो गया है। उसमे सर्व कल्याण की शक्ति और क्षेम भावना भरी हुई है।"

अलका ने हर्ष से कहा—"निस्सन्देह यही बात है भाई! इसीलिए मैं तो उसका पाठ नित्यनियम से करती हू।" विबुध बोला- 'उसका पाठ विघ्नहर और शक्तिदा है, इसलिये प्रत्येक जिनेन्द्रभक्त उसका पाठ करता है।"

अलका बहुत ही प्रसन्न थी। कुछ देर सोचकर बोली—"एक उपकार और करो भाई।" विबुध ने पूंछा-"क्या!" अलका बोली-"आदिभगवान् ऋषभ का पावन चरित्र मुझे बताओ!" यह सुनकर

विवुध का माथा ठनका। उसने कहा-"जानती हो, यह कितना दुष्कर कार्य है ? सद्‌गुरु भी तो भगवान्‌का चरित्र ठीक ठीक न बता सके थे! अन्तिम तीर्थंकर भ० महावीर से सुनकर इन्द्रभूति गौतम गणधर ने उसका बखान किया और फिर जिनसेनाचार्य सदृश मुनिपुङ्गवो ने जिस महान् चरित्र को बताकर भी उसका पूर्ण निर्वाह करने मे अपने को असमर्थ पाया ! ऐसे महान् चरित्र को भला मैं कैसे बता सकूगा 'आदि पुराण' मे पढ लो उसे !"

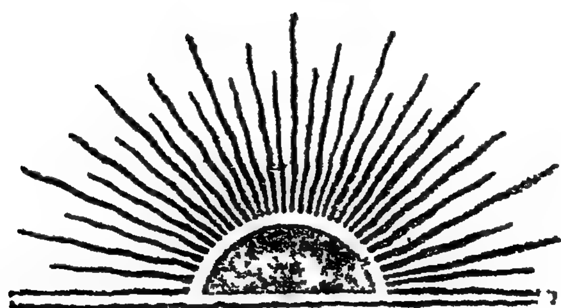
'वहा तो मैंने उसे पढा है।" अलका ने कहा, "परन्तु उसे आधुनिक शैली मे आप मुझे बताइये। भक्ति के लिये कुछ भी असाध्य नही है।"

"किंतु बहन अलका इसमे तो बहुत समय लगेगा।" विवुध ने कहा। अलका अपनी धुनकी पक्की थी-"लगने दो, भगवान का पावन चरित्र सुनना तो अहोभाग्य है।' विवश हो विवुध ने कहा "तेरी जिद है तो सक्षेप में तुझे थोड़ा बताऊँगा।" अलका यह सुन कर बहुत ही खुश हुई और दोनो अपने अपने काम में लग गये।

आदि भगवान् ऋषभदेव



अथवा वृषभदेव के



दिव्य जीवन आलोक में !

आदिकालीन मानवता की झांकी।

"रत्ति दिणाणं भेदो तिमिरादवसीद वेदणा णिंदा।
परदाररदी परधण चोरी ण णत्थि णियमेण॥३३॥
जमलाजमल पसूदा वर बेंजण लक्खणेहि परिपुण्णा।
बदर पमाणाहार अट्ठमभत्तेतु भुंजति॥३३॥"

—तिलोयपण्णत्ती

विबुध ने अलका की जिज्ञासा को शमन करने के लिये उसे 'तिलोयपण्णत्ती' जैसे प्राचीन ग्रंथ से उद्धरण पढकर सुनाये, क्योकि जब तक कि भरत क्षेत्र की तत्कालीन परस्थिति का परिचय प्राप्त न हो तब तक आदि भगवान ऋषभके समय और सद्वृत्त का परिज्ञान होना कठिन ही है। अलका ने पहले ही पूंछा था कि 'आदि भगवान कब हुये? उनके समय के लोग कैसे थे?' अतएव विबुध ने आदि-कालीन मानवता का दिग्दर्शन कराना उचित समझा।

'तिलोय पण्णत्ति' के विवरण से उन्होने जाना कि भरत क्षेत्र में काल-चक्र का प्रभाव यहां अनेक परिवर्तन उपस्थित करता है। वह काल-चक्र दो रूप मे चलता है अर्थात् ऊपर को, जिसमें क्रमशः सब वस्तुओ का उत्कर्ष होता है और दूसरे नीचे को, जिसमें धीरे धीरे चरमोन्नतिको प्राप्त वस्तुओ का ह्रास होता है। पहले को 'उत्सर्पिणी' और दूसरे को 'अवसर्पिणी' कहते हैं। आजकल मानवीय ह्रास का अवसर्पिणी काल चल रहा है। ये दोनो काल छै-छै भागो में बंटे हुये हैं। घड़ी के डाइल को देखिये। बारह चरम संख्या है-उस पर से

जिस प्रकार सुई छै की सख्या तक नीचे को ढलती है, उसी प्रकार अवसर्पिणी के छं कालो मे मानवता का मापदड ह्रास की ओर ढुलकता जाता है। आगे जिस प्रकार घडो की सुई छ की सख्या को पार करके ऊपर को उठती जाती है उसी प्रकार उत्सर्पिणी के छं कालोमें मानव उत्तरोत्तर उन्नति करता जाता है। अवसर्पिणीके इन छै कालोके नाम ये हैं (१) सुखमा सुखमा, (२) सुखमा, (३) सुखमा-दुखमा, (४) दुखमा-सुखमा, (५) दुखमा, (६) दुखमा-दुखमा। उत्सर्पिणी काल में इनका क्रम उलटा हो जाता है। इन कालो के जैसे जैसे नाम हैं वैसे हो वैसे इनके गुण हैं। पहले तीन कालो में 'भोग भूमि' होती है-उस समय मानव निराकुल-सा रहकर आनन्द भोग भोगता है। उस प्रथम काल में नियम से रात-दिन का भेद, अन्धकार, गर्मी व शोत की तिव्र वेदना, परस्त्रीरमण और परधनहरण नही होता, क्यों कि तब विषमतायें नही होती-कोई निजी सम्पति अथवा घर गिरस्थी नही होती। इस काल मे युगल रूप से जन्मे हुये मनुष्य उत्तम शरीर चिन्हो व व्यजनो से परिपूर्ण चौथे दिन बेर के बराबर आहार ग्रहण करते हुए भी हृष्ट पुष्ट रहते हैं। मनुष्य और पशु सब ही फलाहारी होते हैं। एक विशेष प्रकार के वृक्षो से वे अपना निर्वाह करते हैं, जिनको कल्पवृक्ष कहते हैं। ये न तो वनस्पति ही हैं और न कोई दैवी चमत्कार, किन्तु इनकी विशेषता यह है कि ये सब पृथ्वी रूप होते हुए जीवो को उनके पुण्यानुसार उत्तम फल प्रदान करते हैं।× इसका अर्थ यही है कि आजकल के विद्वान जिस काल को 'पाषाण युग' stone age कहते हैं, वही भोगभूमिका आदिकाल है, क्योकि उसमें जीवन-निर्वाह के साधन पाषाण-पृथ्वी के ही थे।

यह सुनकर अलका ने कहा कि 'आजकल के इतिहास वेत्ता तो आदिमानव को वन्दर को तरह वृक्षो पर लटकने वाला और पशुओ की मारकाट द्वारा उदर पूर्ति करता बताते हैं।' विबुधने उत्तरमें कहा-

---

× 'ते सव्वे कप्पदुमा ण वणप्फदी णो वेंतरा सव्वे।
णवरि पुढविसरूवा पुण्णफल देंति जीवाण॥' ४॥'
— तिलोयपण्णत्ति

'बताते तो है, परन्तु यह उनकी कल्पना मात्र है; क्योंकि न तो कोई धर्मग्रन्थ ही इसका समर्थन करते है और नही हो कोई दूसरी साक्षी है !'
अलका को यह सुनकर कौतूहल हुआ क्योकि स्कूल में उसे कुछ और ही पढाया गया था। उसने पूछा- 'धर्मशास्त्रो में क्या लिखा है ?'
'सब ही धर्मोके ग्रन्थोमें यही लिखा है कि आदिमानव फलाहारी और महान सुखी था। उसे दैवी सुख भोगनेको मिलते थे-वह सीधा-सच्चा और सुखी था।' विबुध ने कहा और बताया कि जैनशास्त्रोके अतिरिक्त भारतीय वेद पुराणादि ग्रन्थो और बौद्ध शास्त्रो मे भी आदि मानव की ऐसी ही आनन्द-स्थिति का उल्लेख मिलता है। 'महाभारत' मे लिखा है कि आदिकाल मे मानव बहुत धर्मात्मा और सुखी थे-सब ही समान रूप में भोग भोगते थे-राज शासन की आवश्यकता न थी; किंतु जब उपरातकाल मे मानव के भीतर पाप जगा तब शासन व्यवस्था अस्तित्व में आई।[1] बौद्धो के 'दीघ निकाय' में भी एक ऐसे ही स्वर्णकाल (Golden Age) का उल्लेख है जब मानव धर्मात्मा था। किंतु कालान्तर मे जब मानव हृदय पाप कालिमा से दूषित हुआ तो उसमें परस्पर असंतोष बढ़ा, जिसके मिटाने के लिए उन्होने एक 'महासम्मत' शासक चुना और उससे शांति स्थापित करने का निवेदन किया। चीन देश के महान् संत लाउत्से, जो 'ताव धर्म' के संस्थापक थे, उन्होने भी मानव की आदिस्थिति ऐसी ही बताई है। उन्होने लिखा है कि होअसू (Ho Asu) के काल में मनुष्य कुछ भी करता-धरता नही था, प्राकृत जीवन बिताकर वह सुखी रहता था।[2] यहूदी और ईसाइयोकी भी यही मान्यता है कि आदिकाल स्वर्णकाल था-बागे अदन में आदम और हव्वा फलाहार करते हुये आनद से भोग भोगते थे। 'बुक ऑव जेनेसिस' मे उपरात लिखा है कि वर्जित पाप वृक्ष का फल खाने से मानव का पतन हुआ।[3] यही बात इस्लाम धर्ममे भी कही गई है। आदि मानवो (Aboriginies) की मान्यता भी इसी प्रकार की मिलती है। इडोनेसिया मे भी ऐसा ही विश्वास प्रचलित है कि आदि मानव-युगल पति पत्नी रूप मे बांसो के झुरमुट

१, गोखले, ऐन्शियन्ट इडिया, पृ० ६८ २. वल्लय, दीपाकेट दर्ले बाइबिल, पृ० ५२६-५३० ३. पूर्व पुस्तक पृ० २२४

में जन्मा और उसी मे रहा-वह बहुत ही सुखी था। मिश्र और वैबोलोनिया की प्राचीन मान्यता भी ऐसी ही थी।[4] खोइ खोइ नामक आदिवासी लोग अपने देवता जुइगोय (Jsuigo) की प्रार्थना में स्वय जीवित रहने और अपने पशुओ को रहने देने की प्रार्थना करते हैं और पृथ्वीके फल भक्षण करनेका संकल्प प्रकट करते हैं।[5] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ससार के सभी धर्म और आदिवासी लोग भी आदि मानव को फलाहारी और पूर्ण सुखी प्रगट करते हे। अत. आदि मानव को शिकारी बताना गलत है।

अलका यह सुनकर बहुत ही प्रभावित हुई; किंतु फिर भी उसके मनमे एक शङ्का रहरहकर चुभती थी। आखिर उसने कहा-"भाई, यह हैतो ठीक, परन्तु बुद्धिवादी लोग धर्म ग्रन्थोकी बातको यों ही कह कर टाल देते है।' विद्युतने बताया-बुद्धिवादी लोगोको प्राचीन परम्परा में शङ्का करने के लिए गुजाइश नही है, क्योकि पुरातत्व की साक्षी भी इन धर्म ग्रन्थो की बात का समर्थन करती है। प्राग्-ऐतिहासिक काल के नगरो का उत्खनन जहा जहा भी किया गया वहाँ वहाँ चार हजार वर्षोंसे पुराने भूमिस्तर पर पहुँचने पर उनमें युद्धपरक शस्त्रास्त्र और शत्रु के आक्रमण से रक्षा के लिए नगर-प्राचीर आदि नही मिले हैं। ये बादकी कृतियाँ है। फिलस्तीन की जॉरडन उपत्यका मे तेलैलतेल्यस्सुल नामक प्राचीन नगर के खडहरो को खोदने पर ज्ञात हुआ कि उस नगर मे आत्म रक्षा के साधनों का कोई चिन्ह नही था-लोग युद्ध करना जानते ही न थे। उसकी खुदाई में पत्थर के बर्तन मूसल, चकमक पत्थर बाँट, चाकू छेनी आदि तो मिले, परतु बाण-फलक एक भी नही मिला। क्रेटे द्वीप (crete) के लोग भी ताम्रयुग से पहले सुख शाँति से रहते थे। वहाँ सर्व प्राचीन वस्तुयें अनाज व तेल रखने के मिट्टी के बर्तन मिले थे। मोहनजोदड़ो व हडप्पा में भी शस्त्रास्त्र प्राचीनतम वस्तुओंमें नही मिले।[6] इन सब

४ स्टीवेन्स, दी रिक्वरी ऑव कलचर, पृ० ४३-४४

५ बोरुएट, सेक्रेड बुक्स ऑव दी वर्ल्ड, पृ० ३०

६ स्टीवेन्स दी रिक्वरी ऑव कलचर, पृ० ६७

प्रमाणो के आधार से प्रसिद्ध इतिहासकार इलियट स्मिथ ने निर्धारित किया है कि कृषिकाल से पहले मानव स्वर्णकाल में सुख से जीवन बिताता था-उसके पास शस्त्रास्त्र नही थे। अतएव आदि मानव सीधा सच्चा सुखी मानव था-हिंसक शिकारी नही था। हिंसक तो वह बाद में बना है।

अलका यह सब सुनकर चकित हुई और बोली-'स्कूल की पुस्तको मे यह सत्य क्यो नही पढ़ाया जाता?' बिबुध ने कहा-शिक्षा में सुधार होने पर यह भी सभव हो सकेगा। अब तुम्हे यह तो विश्वास हो ही गया कि आदि के तीन कालोमे भोगभूमिका मानव सुख से कालक्षेप करता था-उनके बीच मे कोई विषमता नहीं थी। अलकाने हर्षसे कहा कि 'निस्सन्देह हमारे आदि पूर्वज बडे सुखी थे। किंतु उनकी सन्तान क्यो सुखी नही रही?' विबुधने कहा-'तुम्हारा यह प्रश्न ठीक है। किंतु, जरा सोचो तो क्या किसी का समय सदा एकसा रहता है? ससार परिवर्तन शील है। यहा काल चक्र चलता है जो ऐसी ऐसी परस्थितिया उपस्थित करता है कि मानव बरवश उनके प्रवाह मे बह जाता है।' अलका ने कुछ सोचकर कहा-हा, यह तो आखो के सामने हो ही रहा है। तिब्बत वाले कब चाहते थे कि चीन वाले उनके देश मे घुस आवे और उनके धर्माध्यक्ष को निकाल कर बाहर करें? किंतु परस्थितियोने यह सब कुछ करा लिया।

'इसमें जरा भी सन्देह नही, किंतु परस्थितियोका निर्माता स्वय मनुष्य है, यह भी एक मौलिक तथ्य है। 'जैसी करनी वैसी भरनी'का सिद्धांत निरर्थक नही है, यह भी याद रखनेकी बात है।'-विबुधने कहा और फिर वह भोग भूमि की आदिकालीन मानवता के ह्रासकी करुण कथा कहने लगा। उसने बताया कि तीसरे कालके अन्तिम पाद में कल्पवृक्षो की सख्या और उपज कम होने से मानवो मे असतोष जन्मा और 'मेरे-तेरे'की विषमता उपस्थित हुई। तब उनमे जो मेधावी था उसने उस विषमता का समाधान किया-वह'मनु' कहलाये। पहले मनु प्रतिश्रुति के काल में पृथ्वी का प्रकाश कम हो जाने से मानव को

---

२. दी इवोल्यूशन आव मैन, पृ० १२

सूर्य और चन्द्र के दर्शन हुये थे-पहले पृथ्वी की ज्योति में वे दिखते न थे। उनके दिखने से दिन-रात का भेद उपस्थित हुआ, जिसके कारण मानव हैरान होगया। प्रतिश्रुतिने उसका समाधान करके नया जीवन बिताना सिखाया। उपरान्त कालान्तर में निम्नलिखित मनु अथवा कुलकर हुए, जिन्होने अपने समय की परस्थिति और आवश्यकता के अनुसार मानव का हित साधा:-

(२) कुलकर (मनु) सन्मति–ज्योतिर्ज्ञान बताया,
(३) " क्षेमङ्कर–सिंहादि पशु क्रूर हुए सो रक्षाका उपाय बताया
(४) " क्षेमधर–" की क्रूरता बढ़ी तो शस्त्र प्रयोग बताया,
(५) " सीमंकर–कल्पवृक्ष कम हुए तो झगड़े मिटाने को उनकी बराबर २ सीमा बाधी,
(६) " सीमधर–" अधिक कम हुए तो उनकी सीमायें परिवर्तितकी
(७) "विपुलवाहन–हाथी, घोड़ा आदि पर सवारी करना सिखाया,
(८) " चक्षुष्मान–संतान होनें का कारण आदि बताया,
(९) " यशस्वान्–संतानो का नाम रखना सिखाया,
(१०) " अभिचन्द्र–संतान पालन की विधि बताई,
(११) " चन्द्राभ–माता-पिता सतानसुख भोगने लगे,
(१२) " मरुदेव–इनके समय से युगल जन्म न होकर एक संतान हुई, अत: विवाह प्रथा चली और जल मे नाव चलाना सिखाया
(१३) " प्रसेनजित–जरायुज सतान उत्पन्न हुई तो धात्री कर्म बताया
(१४) " नाभिराय–सभी कल्पवृक्ष नष्ट प्राय: हुए अत. कर्मभूमि प्रारम्भ हुई, लोग श्रम करने लगे। 'तिलोय पण्णत्ति' में लिखा है:-

"कप्पदुमा पणट्ठा विविहोसहीणि सस्साणिं।
महुर रसाइ फलाइ पेच्छंति सहावदो धरित्तीसु ॥४६७॥
कप्परूण विणासे तिव्वभया भोगभूमिजा मणुवा।
सव्वे वि णाभिराज सरण पविसंति रक्खेति ॥४६८॥

अर्थात्-उस समय कल्पवृक्ष नष्ट हो गये और पृथ्वी पर स्वभाव से ही उत्पन्न हुई अनेक प्रकार की औषधियां, सस्य (धान्यादि) एवं मधुर रसयुक्त फल दिखाई देने लगे। कल्पवृक्षो के नष्ट होजाने पर तीव्र भय से युक्त सब ही भोगभूमिज मानव नाभिराय की शरण में

पहुँचे और बोले रक्षा करो !'

काल ने एक नई परिस्थिति को जन्म दिया था-युग पलट रहा था। पाषाणकी कठोरता मिट रही थी और वनस्पति की कोमलता आ रही थी। भोला मानव इस परिवर्तन के रहस्यसे अनभिज्ञ था। तभी उसका उपकार करने के लिए नाभिराय आगे आये। उन्होंने मानवो को उन वनस्पतियों और फलों को इकठ्ठा करके भक्षण करने का उपाय बताया। मनुष्य उन फलादि को खाकर भूख की पीड़ा को शमन करने लगा। चूंकि इन फलादि को इकठ्ठा करने के लिए उसे श्रम करना पड़ता था, इसलिए इम चौथेकालसे 'कर्म भूमि' का प्रारंभ हुआ। लोग कर्मठ जीवन बिताने को अग्रसर हुए।

इस चौथे काल के आरम्भ में जब आदि मानवता शिष्टतामय कर्मठ जीवन का पाठ पढने के लिए एक महापुरुष की बाट जोह रही थी, तब आदि भगवान ऋषभका जन्म हुआ था। वर्तमान अवसर्पिणी के वह पहले तीर्थङ्कर थे।

अलका यह सुनकर आश्चर्य से बोली-'इसका अर्थ तो यह हुआ कि आदि भगवान ऋषभ पाषाण युग अथवा भोग भूमिके अन्त होने पर जब कृषियुग(agriculture age)का आरम्भ हुआ तब जन्मे थे।'

'यह तो है ही'-विबुध ने कहा-'ऋषभ भगवान को हुये अनेक युग बीत गये। जैन शास्त्रो की गणना के अनुसार उनका जन्म हुये आज ४८ अङ्क प्रमाण वर्ष बीत गई है।'

'अरे! यह तो एक बड़ा लम्बा समय है !' अलका ने अचरज से कहा। 'किंतु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। अब तो वैज्ञानिक भी पृथ्वी की प्राचीनता अरबों वर्षों पहले की बताने लगे और अभी उनकी खोज चल ही रही है। अब चलो देर हो रही है, दूसरा कार्य देखो।'-विबुध ने कहा। और दोनो चले गये।



तीर्थंकर बनने के पथ पर !

'पणमहु चउवीसजिणे तित्थयरे तत्थ भरह खेत्तम्मि ।
भव्वाणं भवरुक्खं छिंदते णाणपरसूहिं ॥५१४॥'

—तिलोय पण्णत्ति

'भरतक्षेत्र में उत्पन्न हुये चौवीस तीर्थङ्करो को नमस्कार करो, क्योकि वे ज्ञानरूपी फरसे से भव्य जीवो के संसार रूपी वृक्ष को छेदते है।' संसार के प्राणियो के लिये तीर्थंकर ज्ञान-नेत्र है। मानव हित के लिए वे धर्म तीर्थ की स्थापना करते है, क्योकि मानव उस तीर्थ की धर्म-नौका पर चढकर दुखमय ससार सागर के पार पहुँच जाता है और सुखी होता है। तीर्थङ्कर स्वय ससार से पार होते हैं और अन्य भव्य जीवो को भी पार लेजाकर सुख के आगार निर्वाण धाम में पहुँचा देते है। तीर्थङ्कर इसी मानव शरीर में पूर्ण ज्ञान को विकसित करके चराचर पदार्थों को देखते हैं—वे कृतकृत्य होकर जीवन मुक्त परमात्मा बनते है। मानवतासे ऊचा उठकर महामानव हो जाते है-शरीर उनका फूल जैसा सुन्दर और कोमल एव सहस्राधिक सूर्यों के प्रकाशको भी हतप्रभ करने वाला हो जाता है। वे अधर देवोपनीत पुष्पों पर चलते और कमलासन पर बैठे दिखते हैं, उनके स्पर्श से वे पुष्प धन्य हो जाते है-उनको बाधा नही होती। इच्छा और अनिच्छा से भिन्न एव राग और द्वेष से अतीत वे तीर्थङ्कर लोक के लिए शरण हैं। सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हुये वे लोक को सच्चे धर्मतीर्थ का बोध कराते हैं। मनुष्य और देवता ही नहीं, पशु भी उनकी दिव्यवाणी का अमृत

भ० ऋषभदेव के पूर्वभवों एवं तीर्थंकर जीवन की झाँकियाँ



प्रथमभव-जयवर्मा का वैराग्य।

१ सिंहपुर नरेश श्रीषेण छोटे पुत्र श्री वर्मा को युवराज पद दे रहे है।
२ बड़ा पुत्र जयवर्मा विरक्त होकर तप तप रहा था कि एक सर्प ने डस लिया। यहीं से भ० ऋषभ की आत्मा ने सम्यक्त्व की ओर पहला कदम उठाया।



दूसराभव-महाबल नरेश!

१ अलकापुरी के महाबल नरेश अपने महामति, सभिन्नमति, शतमति और स्वयं बुद्ध नामक चार मंत्रियो के साथ दार्शनिक चरचा कर रहे हैं।
२ स्वयबुद्ध मंत्री द्वारा जीवन की क्षणभंगुरता जान कर महाबल राजसिंहासन छोडकर वन को चल दिये।



तृतीयभव-ललिताङ्गदेव !

१ ललिताङ्गदेव स्वयप्रभा आदि देवाङ्गनाओ के साथ भोग भोगते हुए भी आत्म-स्वरूप का ध्यान करता था।

२ ललिताङ्गदेव के मृत्योपरान्त स्वयप्रभा विरक्त हुई जिनपूजा आदि धर्मानुष्ठान करती रही।



चतुर्थभव-वज्रजंघ और श्रीमती।

रस पीकर वैर विरोध खोकर प्रेम से परस्पर अठखेलियां करते हैं। तीर्थंकर के चहुओर दूर दूर तक अभय और आनन्द का आलोक छाया रहता है ! ऐसे अद्वितीय महापुरुष होते हैं तीर्थंकर !'—बिवुध ने आगे अलका को यह बताया और फिर कहा कि 'तीर्थंकर की वाणी को सुनकर भव्यजीव आत्मदर्शन का सौभाग्य पाते और आत्मनिर्भरता का पाठ पढ़ते हैं। उनके दर्शन करके मानव को परमात्मा का विश्वास होता है। वह जानता और मानता है कि 'परमात्मा' है और वह परमात्मा स्वयं मानव की आत्मा है। तुम्हारी आत्मा परमात्मा है, आत्मोच्चता और आत्मनिर्भरता का कितना महान् संदेश है यह ! फिर जैसी मेरी और तुम्हारी आत्मा है वैसी ही जीवमात्र की आत्मा है। इसलिये सबको अपने समान समझो और सबके साथ समता और अहिंसा का व्यवहार करो। पूर्ण समता को विकसित करके ही आत्मा परमात्मा बन जाता है। तीर्थंकर यह सर्व कल्याणकारी सन्देश देकर शरीरसे मुक्त होकर लोक की शिखिर पर जाकर शाश्वत शिवस्वरूप का उपभोग करनेके लिए अमर होजाते है। यह है उनकी विशेषता!'

अलका तीर्थंकर भगवान् का स्वरूप सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुई और उनको नमस्कार करके बोली—'वे मानव धन्य थे जिन्हो ने इन २४ तीर्थंकरो को आखोमे चलते फिरते हुये देखा था।'

विवुध ने कहा—'निस्सन्देह वे मानव भाग्यशाली थे। परन्तु अलका! यह याद रखना कि तीर्थंकरो की यह चौवीसी प्रत्येक चौथे काल में हमेशा से होती आई और हमेशा होती रहेगी।'

'इसका अर्थ यह हुआ'—अलका बोली कि 'वर्तमान के ऋषभादि २४ तीर्थंकर ही नही है बल्कि भूत-भविष्यत् के अनेक तीर्थंकर हैं और होगे !'

'विलकुल यही बात है-तभी जिन प्रणीत धर्मतत्व सनातन है, अनादि से है और रहेगा।'—विवुध ने कहा। इस पर कुछ क्षणो के लिए शांति छा गई, मानो दोनो तीर्थंकर भगवानके अनन्त गुणावलोकन मे अपने आपको डुबो वैठे थे। फिर विवुधने मौन भङ्ग करते हुयें कहा—'किंतु अलका, तीर्थंकर पद पा लेना कोई सामान्य कार्य

नही है। आदिभगवान ऋषभ को इसके लिए जन्म जन्मान्तरों से साधना करना पड़ी थी।'

अलका ने उत्सुकता से पूंछा—"भैय्या, उनकी साधना का वृतांत बताओ न ?"

विबुध ने इस पर सक्षेप से आदि भगवान ऋषभ के पूर्व जन्मों का वृतांत बताना प्रारम्भ किया। तीर्थंकर पद पानेके लिये खास बीज एक सर्वज्ञ परमात्मा की सत्सगति है। उनके पादमूलमें बैठकर मुमुक्षु सोलहकारण-भावनाओका मनन और चिन्तवन इस बारीकीसे करता है कि वे उसके रोम-रोम मे समा जाती हैं और इसके दैनिक जीवन व्यवहार में मूर्तमान होती हैं।

इस पर अलका ने पूछा कि वे सोलहकारण भावनायें कौन सी है, जो तीर्थंकरत्व के लिये निमित्तभूत है ? उत्तर मे विबुध ने उन भावनाओं को निम्नप्रकार बताया:—

(१) दर्शन विशुद्धि—आत्मश्रद्धा की निर्मल प्रकर्षता और अनुभव की उत्तरोत्तर वृद्धि!

(२) विनय सम्पन्नता—गुणी पुरुषो की विनय करना और लोक व्यवहार में भी विनय पूर्वक वर्ताव करना।

(३) शीलव्रत—ब्रह्मचर्य पालना (आंशिक रूप में स्वदार संतोष व्रत)

(४) ज्ञानोपयोग—पठन पाठनमें निरत हो आत्मज्ञान प्राप्त करना।

(५) संवेग—सांसारिक कर्मों में आसक्ति को जीतकर विरक्त होना।

(६) शक्तिभर त्याग—शक्ति को न छिपाकर त्याग धर्म को पालना। अतरग में क्रोधादि कषायोको त्यागना और बहिरग में धनधान्यादि का त्याग करके स्वेच्छासे आकिंचन्य व्रती होना।

(७) शक्ति भर तप—शक्तिके अनुसार इन्द्रियनिग्रह और इच्छा निरोधके लिए तप करना।

(८) साधुसमाधि—साधुजनो की सत्संगति में समता भाव को बढ़ाकर समाधि जन्य योगनिष्ठामें पूर्णता प्राप्त करना

(९) वैयावृत्य—भक्ति पूर्वक साधुजनों की सेवा करना और करुणाभाव से जीवमात्र का उपकार करना ।

(१०) अर्हतभक्ति —अर्हंत महापुरुषों—परमेष्टियोंकी भक्ति उनके गुण प्राप्त करने के लिए करना ।

(११) आचार्यभक्ति—सघ के नेता जो आचार्य होते है उनकी भक्ति करना ।

(१२) बहुश्रुतभक्ति—अपने से अधिक ज्ञानी शिक्षक-उपाध्याय की भक्ति करना,जिससे ज्ञानका विकास हो

(१३) प्रवचन भक्ति —सत्य समीचीन शास्त्रोका स्वाध्याय करने मे निरन्तर भक्ति भाव रखना ।

(१४) षडावश्यक पालन-नित्य नियम के छै आवश्यक कार्यों अर्थात् सामायिक, वन्दना, प्रतिक्रमणादि के करनेमे सावधान रहना ।

(१५) मार्ग प्रभावना-'मोक्ष मार्ग का पर्यटक प्रत्येक प्राणी बने' इस पुनीत भावनासे धर्मप्रकाशके कार्य करना

(१६) वात्सल्य—मोक्षमार्गरत साधर्मी भाइयोके प्रति वात्सल्य भाव दर्शाना और जीवमात्रके प्रति विश्वप्रेम ।

इस प्रकार उक्त भावनाओ की परिपूर्णता मानव को इतना उदार और महान बना देती है कि वह समरस में छलछलाता हुआ अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठ जाता है और लोकके लिए सयम और त्याग का नमूना बन जाता है । आदि भगवान ऋषभदेव के जीव ने दस जन्मों में निरन्तर प्रयत्न करके आत्मस्वरूप की प्राप्ति की थी, तब कही वह तीर्थंकर हुए थे ।

अलका ने चकित होकर कहा—'बड़े धीर वीर थे वह, जो जन्म जन्मान्तरोमें आत्मसाधना करते ही रहे! पहले जन्ममे वह क्या थे?'

विबुध बोला-'उनका जीव अनन्तकाल से भवभ्रमण कर रहा था; किंतु जब वह जयवर्मा के भव में था तब ही उसे आत्मदर्शन करने का सौभाग्य पहले पहल मिला था । वह तब सिंहपुर नरेश श्रीषेण का ज्येष्ठ पुत्र था, परन्तु पिताने उसे युवराज पद नही दिया। अपने छोटे भाई को युवराज हुआ देखकर वह अपमान से जर्जरित

होकर जङ्गल में आ रमा। वहाँ सौभाग्य से उसका समागम एक जैन गुरू से हुआ-वह बोले 'जयवर्मा, तुम यथार्थ जयबर्मा बनो। ऐहिक राज्य तो क्षण भगुर है-उसे कोई बलवान आकर छीन सकता है। प्रयत्न करो कि तुम्हे अक्षय जय मिले।' और गुरु के चरणो मे वह मुनि होगये। मोह ममता के धागे को क्षीण करने के लिए वह इस भव से ही अग्रसर हुये। जयवर्मा मुनि आत्म-जय को पुनीत भावना मे तल्लीन थे कि एक सर्पने उनको डस लिया-वह मरे और अलकापुरी में विद्याधरोके राजा महाबल हुये।

आत्मवाद के सुन्दर आलोक मे आया हुआ मानव राज-ऐश्वर्य पाकर भी उसमें आसक्त नही होता। महाबल ऐसे ही महाभाग थे। उनके हृदय-अन्तरीक्ष में आत्मज्ञान की उषा-लालिमा का सौन्दर्य चमक उठा था। राजा होकर भी उनको विनय सहित बर्तने और दान देकर लोगो का उपकार करने में मजा आता था। अपने मंत्रियो से राजनीत से अधिक वे तत्वचर्चा करते थे। अनात्मवादियो को आत्मा के अनन्त ऐश्वर्यका परिज्ञान कराकर श्रद्धालु बना देना उनके बायें हाथ का खेल था-व्यक्ति अपने 'आप' का बोध आत्माके अस्तित्व को सिद्ध करता ही हैं-जानना देखना शरीर के वश का नही है, ये गुण तो जीवात्मा में ही हैं। इस प्रकार धर्म चरचा और अभ्यास करते हुये महाबल की दर्शनविशुद्धि और विनयादि गुणो की वृद्धि हुई थी। अन्त में उनको ऐसा लगा कि राज्य उनको काट रहा था-उन्होने उसको त्याग दिया।

मुनि होकर महाबल ने खूब तपश्चरण किया। तप के प्रभावसे उनका जीव स्वर्गो में ललितांग देव हुआ। स्वयं प्रभा आदि देवियों के साथ भोग भोगते हुये भी वह उनमें आसक्त न हुआ-जिनेन्द्र की भक्ति मे रसपान करता हुआ वह चया और वज्रजघ नामका राज पुत्र हुआ। स्वयप्रभाका जीव श्रीमती नामक राजकन्या हुई। दोनो का अपना स्वर्गीय जीवन याद आया, जिसके उन्होने चित्र बनाये। आत्मज्ञान की निर्मलता ऐसी बढी कि पूर्व भव साक्षात् आँखो के आगे आया। दोनो का विवाह हुआ। धर्म का महत्व जानकर दोनो ही सदा जिनेन्द्रभक्ति और गुरुओंकी सेवामें तल्लीन रहते। दुखियों



पंचमभव-उत्तर कुरु में उत्तम भोग भूमिया।

१ उत्तर कुरु की उत्तम भोग भूमि मे बज्र जंघ और श्रीमती के जीव युगल दम्पति हुये, आनन्द भोग रहे है।

२ स्वयंबुद्धि मंत्री का जीव प्रीतकर मुनि हुआ। उन्होने दूसरे चारण मुनि के साथ जाकर उन युगलदम्पति को सम्बोधा।



छटाभव-श्रीधरदेव और शतबुद्धि को नर्क में समझाना।

१ बज्रजंघ का जीव ईशान स्वर्ग मे श्रीधर देव हुआ। उसी स्वर्ग मे श्रीमती का जीव स्त्रीलिङ्ग छेदकर स्वयप्रभ देव हुआ। दोनो ही नन्दनकानन मे आत्मचर्चा करते घूम रहे है।

२ शतमति मंत्री जो महाबल को असत्योपदेश देता था, मरकर नर्कमे दुख उठा रहा जानकर श्रीधरदेव उसको उपदेश देनेगये। जीवो को सम्यग्दृष्टि बनाना सबसे बडा उपकार है।



सातवांभव-सुविध की धर्मोपासना।

१ श्रीधरदेव पद से मह्नावल अथवा वज्रजंघ का जीव चया तो सुसीमा नगराधीश सुदृष्टि का सुविधि नामक प्रतापी पुत्र हुआ । श्रीमती का जीव स्वयप्रभ देव आयु पूर्ण करके उन्ही का केशव नामक पुत्र हुआ, जिसको गोदमे लिये दुलराते विरक्त न होते ।

२ पुत्र के मोह मे ग्रस्त रहते भी आत्मदृष्टा रह श्रावक के व्रत पालते। अन्त मे मोह को जीतकर मुनि हो तप तपने लगे।





आठवांभव-अच्युत स्वर्ग मे इन्द्र और प्रतीन्द्र।

१ वज्रजंघ का जीव अच्युत स्वर्गमे इन्द्र का ऐश्वर्य इन्द्राणी के साथ भोग रहा है।

२ श्रीमती का जीव केशव भी उसी स्वर्ग मे प्रतीन्द्र हुआ इन्द्र और प्रतीन्द्र धर्म चर्चा कर रहे हैं।

को करुणा दान देते। कदाचित् किसी साधुको कोढ़ जैसा भयंकर रोग हुआ देखते तो उन ग्लान साधुकी वैयावृत्य निस्संकोच होकर करते थे। त्याग और अनासक्तिके भाव उनके जीवन व्यवहार मे पद-पद पर चमकते थे। लोग उन्हे देखकर हैरान होते थे और अचरजसे कहते थे—'यह कैसे महान् हैं। राजारानी होकर भी इनको गुमान नही। साधुओ और दीनदुखियोके पीछे ही यह दिखते हैं।' अन्त मे दोनोने शरीर त्याग किया और एक सुन्दर-सा नया शरीर पाया।

इसबार वह उत्तरकुरु भोगभूमि में युगल-दम्पति जन्मे, मानो पूर्वभवो की सारी सामिग्री वह साथ ले आये थे। दान देने का फल ही ऐसा है—"भोग सामिग्री का बीज बोना हो तो मानव दान दे—निस्संदेह वह सुखी होगा। वज्रजंघ और श्रीमती ने दान दिया तो उनको भोगभूमिका आनद मिला। भोग भोगने मे वे ऐसे मग्न हुये कि उनको आत्माकी सुध ही न रही, किन्तु वे सम्यक् दर्शन—आत्म श्रद्धाको पा चुके थे। इसलिए उनके अज्ञानको मिटानेका योग अनायास मिल गया। एक चारण मुनिने आकर उनको सावधान किया। साधु बोले—'भोगकी दुनियामे आनन्द मानते हो, किन्तु आयुके अन्त में यह सब ठाठ यहा ही पडा रह जावेगा।' यह सुनकर युगलियोंको होश आया और वह गुरूके चरणो मे लोट गये। मुनि बोले—'जानते हो पहले तुम महाबल राजा थे, तब मैं तुम्हारा स्वयंबुद्ध मंत्री था—अब मैं प्रीतङ्कर मुनि हू। इन भोगो से कभी तृप्ति न होगी, यह तुम भूल कैसे गये?' मत्रीके जीवने उनका उपकार किया। युगल दम्पति भोगोसे विरक्त हो गये। सारी भोग सामिग्री उनकी लालसा और आसक्ति को जगाने के लिये हाथ फैलाये खड़ी थी। कामिनी और कंचन उनको सुलभ थे—फिर भी वह विरागी। कितना महान् त्याग और तप था उनका! उसके संस्कार उनकी आत्माको निज सौन्दर्य मे चमकने के लिए अग्रसर कर रहे थे।

अन्तमे वह युगल दम्पति ईशान स्वर्गमें श्रीधर देव और स्वय प्रभा नामक देवी हुए। स्वर्गके सुखोको पाकर भी वे उनमें आसक्त न हुये। श्रीधर स्वयंप्रभासे धर्मकी ही बातें करता और दोनो ही मिलकर जिनेन्द्र की भक्ति करते—उनके पावन जीवन के दृश्योका

नाटक रचते। छायाचित्र में जीवन दृश्यो के अवतरण और विघटन की आख मिचौनी देखकर वे स्वर्ग के सुखो की क्षण-भंगुरता का अनुभव करते। कहते—'स्वर्गका जीवन भी धूपछाया है।' और एक दिन आया जब मृत्यु ने उनकी आत्माओ को पुनः मध्यलोक में ला बिठाया।

इस बार वह सुसीमा नगर के सुविधि नामक शासक हुये और स्वयप्रभादेवी का जीव उनका पुत्र केशव हुआ। वज्रजघ और श्रीमती के भवमें उनका परस्पर गाढा प्रेम था—अब वह पिता-पुत्र के स्नेह में बदला—मोह की शृङ्खला कुछ ढीली हुई, फिर भी वह केशव को बहुत प्रेम करते थे। एक दिन सुविधि नरेश राजेद्यानमें घूम रहे थे, तब उन्होने देखा कि एक बंदरिया अपने बच्चेको पेट से चिपटाये फव्वारे पर बैठी हुई एक फल खा रही थी। देखते ही फव्वारे का हौज पानी से भर गया। बन्दरिया खाने में ऐसी मस्त थी कि उसने हौज को पानीसे भरते हुये देखा ही नही! राजाने सोचा कि 'रसना इन्द्रियके विषयमें यह बन्दरिया कैसी पगली होगई कि अपनेको सकटमें डाल लिया!' अचरजसे वह देख रहे थे, उधर पानी बढ रहा था और बदरिया फव्वारे पर चढती जारही थी। जब पानी बहुत बढा तो खानेका फल फेंककर बच्चे को सभाल लिया और जब उसमे भी अधिक पानी बढा तो बदरियाको अपने प्राणोके लाले पडे—उसने बच्चे का मोह छोड दिया—बच्चेको फेंककर वह किनारे पर कूद आई! सुविधि नरेश ससारी जीव की मोह बुद्धि देखकर अवाक् रह गये। उन्होने पानीसे बच्चेको निकालकर उसको अभय बनाया और सासारिक स्नेह-सम्बन्धो का खोखलापन उन्होने आखोसे देखा। केशव को राज्यभार सौंपकर वह मुनि हो तप तपने लगे। समाधि मरण द्वारा देह छोडी तो स्वर्गमे इन्द्र हुए। कुछ काल पश्चात् केशव का जीव भी उसी स्वर्गमें प्रत्येन्द्र हुआ। दोनो ही निरन्तर अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग की साधना मे लीन रहते—सदा ज्ञान चरचा करते-स्वर्ग की अप्सरायें उनके लिये छाया मात्र थी—इतने निष्काम थे वे!

इन्द्रका जीव, जो आत्मसाधना मे जागरूक हुआ तीर्थंकर बनने

के पथ पर आगे बढ़ रहा था, आयुके अन्तमें चया और पुण्डरीकिनी नगरीमें चक्रवर्ती राजा हुआ। उसका नाम वज्रनाभि था। भौतिक ऐश्वर्य की पराकाष्ठा उसे अपने ही पुरुषार्थ से मिली थी—उसके लिए वह एक चुनौती थी। ऐश्वर्य उसे अपनी वासना भरी रग-रेलियों और शासनके अहकार मे बहा ले जाना चाहता था। परन्तु वह तो आत्मवादी था—वह भौतिकता में कैसे बह जाता ? एक चक्रवर्ती नरेशका ऐश्वर्य उसे अपनी ही करनी से मिला था। परतु वह तो राजमहल में भी विरागी था ! सेनापतिने आकर उस को बधाई दी और कहा, 'हे सम्राट ! तुम्हे चक्ररत्न की प्राप्ति हुई है। छै खण्ड पृथ्वी को जीतने का विजय चिन्ह ही मानो आ गया है।' वज्रनाभि सुनकर मुस्करा दिये और एक विचार में पड गये। उन्होंने सोचा—'प्रकृति मेरे अनुकूल है तभी तो राजशक्ति का परमोत्कृष्ट चिन्ह चक्ररत्न मेरी आयुधशाला मे उत्पन्न हुआ है। मुझे दिग्विजय करने का सदेश ही मानो वह दे रहा है। मै दिग्विजय करूगा—चक्रवर्ती राजा बनूगा, परतु मेरी दिग्विजय दूसरे देशो को हथियाने के लिए नही होगी। दूसरे देशोको हडपने से मानवो में असतोष बढता है। मैं असतोष को मिटाऊगा—जो पापचार लोक में बढ रहा है उसका अन्त करूगा। सारा संसार मेरा कुटुम्ब होगा और उसको आत्मरसी बनाकर मै विश्वबधुत्व की वात्सल्य-गंगा बहाऊगा।' जो उन्होंने सोचा वही किया। सेनापति ने सेना सजाई और पूरे ऐश्वर्य एव सम्मान-मर्यादा के साथ वज्रनाभि दिग्विजय के लिए निकले, किन्तु उनको सेनाकी अपेक्षा अपने आत्मबल और प्रेम पर अधिक विश्वास था प्रमोजयति सर्वथा' का सदेश फैलाते हुऐ वह जहाँ जाते वहा के शासकोका मन मोह लेते। वह उनका आदर करता और 'जीयो एव जीने दो' के सिद्धातको अपना शासन सूत्र बना लेता। 'अहिसा ही परम धर्म है'—'किसीको पीड़ा न पहुचाओ सबसे प्रेम करो'—यह आदेश हवा की तरह शीघ्र ही सारे ससारमें व्याप्त हो गया। लोग कहने लगे—'यह राजा बडा विलक्षण है। रक्तका एक बूद बहाये बिना ही यह जनता का हृदय जीत लेता है। शासक लोग उसके प्रेमके आगे स्वत. झुक जाते है और जीव मात्रको

अभय बनाने की घोषणा करते है। उसे उपहार देते है और कोई २ तो अपनी कन्या ही समर्पण कर चुके है। वज्रनाभि के निकट सारी मानवता एक है। म्लेच्छ देशोमें भी उसने अहिंसा का शङ्ख बजाया है। म्लेच्छ राजाओ ने अपनी कन्या दी तो उन्हें भी ले आया है। उनके तो भाग्य ही खुल गये—सच्चे धर्मके दर्शन उनको हुए है।'दया ही धर्म है-यह सबने जाना और माना है!' इसप्रकार वज्रनाभि की अपूर्व विजय की घोषणा सारा ससार करने लगा-ससार में अहिंसा की एक लहर ही दौड़ गई।

इस भवमे श्रीमती का जीव चक्रवर्ती वज्रनाभिका गृहपति हुआ बहुत ही विचक्षण! उधर उनके आठ भाई भी पूर्ण विवेकी थे; मानो वज्रनाभि की राजसभाके वे नौ रत्न थे। वे निरन्तर धर्म चरचा करके धर्मभाव बढ़ाने और उसे चारित्रमें उतारनेके लिए संलग्न रहते थे। धर्मक्रियाओ—दर्शन, पूजन, स्वाध्याय, सामायिक आदि को करने का फल तो यह होना ही चाहिये कि उनके करने से जीवनकी विषमता मिटे और आकुलता घटे। धर्म-कर्म करने पर भी यदि कषायोकी तपिश बनी रहे तो उनके करने से लाभ ही क्या? मानव को सुख चाहिए और सुख आकुलता मिटे बिना होता नहीं। अतः मानवका प्रयास आकुलता को मिटाने के लिये होना चाहिये। कहा भी है:—

'आतमको हित है सुख, सोसुख—आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिव मांहि तातें-शिव मग लाग्यो चहिये॥'

और वज्रनाभि अपने नौ साथियोके साथ शिव-मगमें लगे। उन्होने तीर्थंकर वज्रसेनके पादमूलमें बैठकर सोलह कारण भावनाओ का चिन्तवन किया और उनको जीवनमें उतार लिया—उनका नैसर्गिक धर्मभाव इतना निर्मल हुआ कि तीर्थंकर का साक्षात् आदर्श जो उनके सम्मुख था उनकी आत्मा पर अङ्कित हो गया—वह सस्कार इतना प्रभावशाली था कि उन्होंने 'तीर्थंकर नामकर्म-प्रकृति' का बंध कर लिया। आयुके अन्तमे समाधिमरण किया और सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र पद पाया। वहा भी अहमिन्द्रोके साथ वह आत्मानुभवके अभ्यास में तल्लीन रहते थे।



नवांभव-वज्रनाभि चक्रवर्ती और धनदेव गृहपति।

१ वज्रजघ का जीव अच्युत स्वर्ग से आकर विदेह क्षेत्र के पुण्डरीकणी नगराधीश राजा वज्रसेन व रानी श्रीकान्ता का वज्रनाभि नामक चक्रवर्ती पुत्र हुआ और श्रीमती का जीव उनका गृहपति धनदेव हुआ।

२ चक्रवर्ती राज्य को त्याग कर वज्रनाभि अपने आठ भाइयो और धनदेवके साथ मुनि हुये। तीर्थंकर वज्रसेन के पाद मूलमे सोलह कारण भावनाओ को मूर्त रूप देकर तीर्थंकर कर्म प्रकृति का वध किया।



दसवांभव-सर्वार्थसिद्धि विमान में अहिमेन्द्र।

१ तपश्चरण के प्रभाव से वज्रजघ का जीव सर्वार्थ सिद्धि मे अहिमेन्द्र हुआ, आतमध्यान मे लीन रहता।

२ अन्य अहिमेन्द्रो के साथ धर्मगोष्ठि कर रहे हैं।



ग्यारहवांभव-प्रथम तीर्थंकर युगादि ब्रह्मा श्री ऋषभदेव ।

१ सर्वार्थसिद्धि से चयकर वज्रजंघ का जीव अयोध्याके राजा नाभि रानी मरुदेवी के पुत्र तीर्थङ्कर ऋषभदेव हुए ।

२ प्रजा को कृषि आदि षट्कर्म बता रहे है ।



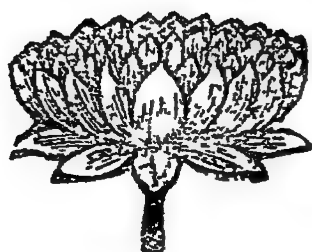
३ भरतादि पुत्रों को ऋषभदेव ने विद्यायें और कलायें सिखाई ।

४ ब्राह्मी और सुन्दरी को लिपि और गणित सिखाये ।

सर्वार्थ सिद्धिने मानो उनके लिए सकल सिद्धिका द्वार ही खोल दिया। जब देवायु पूर्ण होने को आई तो उनके शुभागमन के पूर्व चिन्ह आयोध्या में दिखने लगे। देखा अलका, ऋषभदेव के जीव को तीर्थंकर पद पानेके लिये कितना महनी आत्म प्रयास और साधना करना पडी थी!'—विबुध ने कहा।

'निस्सदेह उनकी साधना महान थी'—अलकाने उत्तर में कहा और दोनो ने भगवान को मस्तक नमाया। अलकाकी हृदतंत्री झंकृत हो उठी और वह अनायास उनके पूर्वभव गुनगुने लगी:—

आदि जयवर्मा दूजे महाबल भूप तीजे,
सुरग ईशान ललितांग देव थयो है।
चौथे वज्रजंघ एह, पांचवे जुगल देह,
सम्यक ले दूजे देवलोक फिर गयो है॥
सातवें सुबुद्धिराय आठवें अच्युत इन्द्र,
नववें नरेन्द्र वज्रनाभ नाम भयो है।
दसौं अहमिन्द्र जानो, ग्यारहवें ऋषभ भान,
नाभिराय 'भूधर' के शशि जन्म लियो है॥



आदि-भगवान का जन्म-मङ्गल और प्रारम्भिक जीवन।

"ततो महोत्सवश्चक्रे नाभिना सुतजन्मनि ।
समानन्दित निःशेषजनो युक्तया यथोक्तया ॥१६०॥
त्रैलोक्य शोभमायातमैन्द्र कम्पितमासनम् ।
सुरासुराश्च सञ्जाताः किंकिमेतदितिस्वनाः ॥१६१॥"

—रविषेणाचार्यः

'जब सर्वार्थ सिद्धिके विमान में तीर्थंकर ऋषभ के जीव अहिमेन्द्र को जिनेन्द्रभक्ति और तत्वचर्चा करते हुए आयुका अधिकांश भाग व्यतीत हो गया—मात्र छै मास शेष रहे तो उन्होने अनुभव किया कि उनके जीवको मध्यलोकमें दूसरा जीवन बसाना है। वियोग की उस वेला पर भी उनको कोई विकलता न हुई—वह भेदविज्ञानी जो थे—वस्तुके स्वरूप को जानते थे। सयोग और वियोग—जीवन और मरण शाश्वत जीव और अजीव को एक पर्यायके विघटन और दूसरेके अवतरण का द्रव्य परिवर्तन मात्र है। सच्चा श्रद्धालु यह जानता है।' इन शब्दो के साथ दूसरे दिन विबुध ने अपनी बात प्रारम्भ की !

मलकाने देवपर्याय की बात सुनकर पूछा—'भाई, क्या सचमुच देव होते हैं?' विबुधने कहा—'हा' संसारी जीव की चार गतिया अर्थात् (१) मनुष्य, (२) देव (३) तिर्यञ्च, एवं (४) नर्क गतिया

होती है। उनमें देव-देवियां चार प्रकारके होते हैं: (१) भवनवासी (२) व्यन्तर (३) ज्योतिषी और (४) कल्पवासी। कल्पवासी देव स्वर्गों मे रहते और श्रेष्ट होते हैं।'

अलकाने फिर जरा गंभीर होकर पूंछा—'यदि सचमुच यह देव होते है तो वे हमको दिखते क्यो नही ?' विबुधने बताया—'देवो का शरीर मनुष्यो जैसा स्थूल न होकर सूक्ष्म-वैक्रियक होता है। इसके अतिरिक्त उनके रहने का आवास हमारे क्षेत्रसे बहुत दूर और अलग है। उनमे व्यंतरदेव—भूतप्रेतादि अलबत्ता हमारे लोकमें भी जहां तहां निर्जन स्थानो और वृक्षो पर रहते है और बड़े कौतूहली होते है। उनके कौतूहलकी घटनाये जबतब सुनने को भी मिलती है। और फिर सूर्य, चन्द्रादि ज्योतिषी देवोके विमान तो आंखोसे दिखाई भी पड़ते है। अत: देवगतिके अस्तित्वमे शङ्का करने के लिए गुंजाइश नही है। प्राय.सभी धर्मोने उनको माना है।'

'हां, यह बात तो है।'—अलकाने माना और कहा—'अशोकके एक धर्मलेख में भी देवोपनीत दृश्य दिखाने का उल्लेख है।' विबुध ने कहा—'होना चाहिये क्योकि तब यहा केवली व श्रुतकेवली सदृश महापुरुष मौजूद थे। स्वर्ग के देवता उन के दर्शन करने आते थे। आजकल वैसे महापुरुषो के दर्शन दुर्लभ है और यहां का वातावरण भी हिंसाकी दुर्गंधिसे दूषित हो रहा है-इसलिए स्वर्गसे देवो का आना भी बन्द हो गया है।' अलका देवो की बात जानकर प्रसन्न हुई और कहा-'भाई, आदि भगवान का पावन चरित्र आप बताइये। व्यर्थ ही मैने बाधा उपस्थित कर दी।' विबुधने उत्तर दिया-'शङ्का का समाधान कर लेना तो ठीक होता है।' और आगे उसने अपनी बात कहना प्रारंभ कर दी!

सर्वार्थ सिद्धि विमानमे जब उन अहमेन्द्र की आयु छं मास शेष रही, तो इन्द्रने अपने अवधिज्ञान से जाना कि उनका जीव इस अवसर्पिणीकाल का भरत क्षेत्रमें पहला तीर्थंकर होगा। तुरन्त ही इन्द्रने कुवेर को आज्ञा दी कि वह मध्यलोक मे जाये और अयोध्या नगरी की विधिवत् सुन्दर रचना करे। कुवेर आया तो उसने देखा कि नाभिरायके प्राङ्गणमे जो कल्पवृक्ष था वह एक सुन्दर आवास के

रूपमें चमक रहा है—बहुत से युगलिया मनुष्य काल परिवर्तन की विषमता से भयभीत हुये उसके चहुँ ओर चक्कर लगा रहे थे। कुवेर ने उस आवासको इन्द्रमहल का रूप दिया और उसके चारो तरफ हाठ-बाजार, मंदिर आवास आदि की रचना करके प्राचीर कोट ऊचे २ प्रवेश द्वारो सहित एक अद्भुत नगर ही बसा दिया। उस नगरकी विशेषता यह थी कि उसके नागरिकोके पास कोई आयुध (शास्त्रास्त्र) नही था—वे परस्पर प्रेमसे रहते थे। इसी कारण उस नगर का सार्थक नाम 'अयोध्या' था। तीर्थंकर भगवानके शुभागमन की सूचना देने के लिए ही मानो कुवेर राजप्राङ्गण मे प्रतिदिन रत्नवृष्टि करता था।

'अलका निस्सदेह वह दिन पवित्र था जब आसाढ मासके कृष्णपक्ष की कालिमाके वक्षस्थल पर द्वितीयाका चन्द्रमा चमका था। लोकके लिए साक्षात्ज्ञान प्रकाश बनकर ही वह अहिमेन्द्रका जीव उस समय सर्वार्थ सिद्धि विमान से चया और नाभिराजा की रानी मरुदेवीकी कोखमें अवतरित हुआ! रानी आनन्द विभोर हुई जब उन्होने सोलह स्वप्न देखे और उनका अर्थ नाभिराजासे सुना। त्रिलोकतिलक तीर्थंकर सदृश महान् आत्माकी माता बननेका सौभाग्य उन्हें मिला है—यह सोचकर उन्हें बडा सतोष होता और देवाङ्गनायें अपनी सेवा-सुश्रूषासे उसमें चार चांद लगा देती! इन्द्रने गर्भस्थित आदि भगवान की स्तुति 'हिरण्यगर्भ' कहकर की, क्योकि तब कुवेर उनके सम्मान में स्वर्ण-वर्षा कर रहा था।'

नियतकालमें आदि भगवान का जन्म-मङ्गलका प्रसङ्ग आया। चैत्र मासमें नवजीवन की हरियाली चहुँओर छिटक रही थी, परन्तु उसपर कृष्णपक्षकी कालिमा छा रही थी। वह मानो लोकके अज्ञान दशाकी चादर ही बन गई थी। नवमीको पावन तिथि और उत्तराषाढ नक्षत्रका योग मानो रह रहकर मानवो को यह आश्वासन दे रहे थे कि 'घबडाओ नही, तुम्हारी कठिनाईयो का अन्त आ गया—सम्पूर्ण नो निधिया ही तुम्हें मिल रही है।' आज ऐसे ही महापुरुषका आदि भगवान के रूपमें माङ्गलिक अवतरण हो रहा है!' इन्द्रका आसन कंपने लगा और भवनवासी देवोके आवासोमें घटे बजने लगे। आकाश

निर्मल हो गया। मृदुल सुगंधित मलय पवन बहने लगा। आदि भगवान का प्रभाव और तेज प्रकाश मे आरहा था। इन्द्रने प्रथम तीर्थंकर का जन्म हुआ जाना। वह तुरन्त देवसमूह सहित अयोध्या आया और जय जयकारसे आकाश गुंजा दिया!

अयोध्याके नागरिक यह देखकर अचम्भेमे पड़ गये, किन्तु उन्हें यह जानते देर न लगी कि रानी मरुदेवी ने एक पुत्र रत्नको जन्म दिया है और वह सब नाभिरायजो को बधाई देने चल दिये। नाभिरायने भी पुत्र जन्म का बड़ा उत्सव मनाया। इन्द्रने आनन्द नाटक रचा और पाण्डुकशिला पर लेजाकर भगवान का अभिषेक क्षीर समुद्रके जलसे किया, उपरान्त उनकी स्तुतिकी और बालक भगवान को उनकी माता को सौप दिया। माता मरुदेवी तीर्थंकर शिशुका अद्भुत सौन्दर्य देखकर कभी उसका मुख चूमती और कभी उसे छातीसे लगा लेती। उनके हृदय मे सुखका समुद्र ही उमड़ पडा था। नाभिराय भी पुत्रकी अलौकिक कान्ति देखकर आनन्द विभोर हुये थे। चूंकि इन्द्रने सर्व प्रथम बालक-भगवान की पूजा करके उनको महानता प्रदानकी थी, इसलिए माता-पिताने उनका नाम ऋषभ रक्खा—वह प्रथम धर्मावतारी पुरुष थे, इसलिए वह 'वृषभ' और 'आदि भगवान' भी कहलाये थे।

गत जीवनो की साधना ने भ० ऋषभकी आत्माको आन्तरिक विकास मे बहुत आगे बढ़ा दिया था। भौतिक जीवन की सर्वार्थ सिद्धि उन्हें सुलभ हुई थी और तब वह शाश्वत अनन्त जीवन के माङ्गलिक द्वार पर पहुंच चुके थे। उस शाश्वत जीवन का आभास उनके शरीरके गठन और आभा से दुनिया को देखने को मिल रहा था। और इस अपेक्षा वे बालक आदि भगवान कुछ विलक्षण से लगते थे। लगना भी चाहिये, क्योकि उनकी साधना विकसित और फलित हो रही थी। जन्मसे ही उनका ज्ञान सारे ही रूपी पदार्थों को जानने की क्षमता रखता था—राजमहल की दीवारो के भीतर रहते हुए भी वह दृश्य जगतकी सभी बातोको जान लेते थे।

अलका यह सुनकर जरा चौकी और बोली—'तो कैसे जान लेते होगे? हम तो अपनी पीठ-पीछे की भी बात नही बता सकते!'

विवुधने मुस्कराते हुये उत्तर दिया—'निस्सन्देह हमारा ज्ञान ऐसा ही सीमित होरहा है। हममें और एक साधक सम्यग्दृष्टी के ज्ञानमे बड़ा अन्तर है; उसपर बालक तीर्थंकर भगवान तो साधक-सम्यग्दृष्टियोमें भी महान थे। इसीलिए उनके दर्शनावर्णीय और ज्ञानावर्णीय कर्मोंका क्षयोपशम कही अधिक विशेष था-इसोलिए वह अवधिज्ञान(Clairvoyance) को लेकर ही जन्मे थे। आज भी दुनिया में जब कभी ऐसे विशिष्ट ज्ञानी देखनेको मिल जाते हैं जो दूर देशोके दृश्योको आखो देखी घटनाकी तरह बता देते है।' यह सुनकर अलका को सतोष हुआ और उसने पू छा-'आदि भगवान्मे और क्या विशेषताये थी ?'

विवुधने बताया कि 'बालक भगवानके ज्ञानको देखकर मानव प्रसन्न मुद्रा धारण कर लेता था। उनके शरीरका निर्माण भी सर्वोत्कृष्ट पुद्गल परमाणुओसे नामकर्म रूपी चितेरेने किया था कि उन जैसा सौन्दर्य कही ढू ढे न मिलता था। सामुद्रिक शास्त्रमे जितने शुभ लक्षण और व्यञ्जन कहे गये हैं, वे सब उनके शरीर मे शोभते थे, वल्कि उनसे भी अधिक सौम्य और समचतु सस्थान लिये हुये वह था। दूधकी तरह सफद उनके शरीरका रक्त था और उनके शरीरसे निरन्तर सुगधि ही वहतो रहती थी। एक सत और महापुरुषकी महानता उनके रोम-रोमसे टपक रही थी। उनका सुभाव मैत्री, प्रमोद और करुणाके भावो से ओत प्रोत था। उन पर इच्छा पिशाचिनोकी साया भूले से ही पड पाती थी, क्योकि उनका हृदय एक सतका हृदय था। दूसरोका हित साधनेमे ही उनको आनन्द आता था। यदि माता-पिताका आग्रह न होता और लोकके सामने आदर्श गृहस्थ जीवनका नमूना उपस्थित करना आवश्यक न होता तो शायद वह विवाह भी न करते। युवावस्थामें उनका विवाह यशस्वती और सुनन्दा नामक सुन्दर और सुशील राजकुमारियोसे हुआ था। वे सुकच्छ देशके कच्छ और महाकच्छ नामक राजाओकी पुत्रिया थी।

यशस्वती ऋषभदेव की पट्टरानी थी। एक दिन उन्होने चार शुभ स्वप्न देखे जिनमे पूर्वाभास हुआ कि उनकी कोखमें जो जीव आया है वह महा पुण्यशाली है—वह चक्रवर्ती सम्राट् होगा। उनका जन्म भी चैत्र कृष्ण नवमी को हुआ। ऋषभने उनका नाम भरत

रक्खा। जब ऋषभदेव का जीव वज्रजंघ राजा था, तब उस भवमें भरत का जीव उनका मतिवर नामक मंत्री था। भरतका जीवन एक शासक का आदर्श जीवन था जो घर ही मे वैरागी रहे और जिन्होंने अहिंसाको ही अपने शासनसूत्रका आधार बनाया था। वह एक महान् आदर्श शासक थे, इसीलिए यह देश उनके नामकी अपेक्षा 'भारतवर्ष' कहलाया।

रानी यशस्वतीको भरतके अतिरिक्त ९९ पुत्रोंकी माता होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ और ब्राह्मी नामक एक आदर्श पुत्रीकी भी वह माँ थी। ऋषभदेवकी दूसरी रानी सुनन्दाकी कोखसे बाहुबली नामक एक महा बलवान पुत्र और सुन्दरी नामक कन्या जन्मी थीं। माता-पिताने इन सबका पालन पोषण सुचारु रीतिसे किया था।

आदर्श गृहस्थाश्रमके लिए विवेक और संयम मूलाधार है। चाहे पुत्र हो अथवा पुत्री दोनोका आत्मज्ञानी और विवेकी होना आवश्यक है। इसीकारण आदि भगवानने पुत्रसे पहले पुत्रियोको शिक्षित बनाया था। भावीसंतान मां की गोदमे पलकर ही योग्य अथवा अयोग्य बनती है। योग्य माँकी ही योग्य संतान होती है। अतः पुत्रके समान ही पुत्रीका भी लालन पालन होना उचित है-स्वस्थ्य, सुन्दर और सुशिक्षित कन्या ही योग्य मां बन सकती है। यही सोचकर आदि भगवान्ने शिक्षा पद्धतिका आविष्कार ब्राह्मी और सुन्दरीको लक्ष्य करके ही किया था।

आदि भगवान्ने देखा कि ब्राह्मी और सुन्दरी परिपक्व बुद्धि हो गई हैं। उन दोनोको उन्होंने अपने पास बैठाया और काष्ठपट्टिका पर चित्राङ्कण करके उनका मन ललितकलाके सौन्दर्य से मुग्ध कर दिया। सुन्दरविटिपो और मन मोहक शावक शिशुओंके रूपको देख कर उनको बड़ा कौतूहल होता। इसप्रकार जब उनका मन और बुद्धि शिक्षाकी ओर आकर्षित हुये तो ऋषभदेवने ब्राह्मीको अक्षर लिपि का बोध कराया। उससे पहले अक्षरलिपि प्रचलित न थी-यह आदि भगवानका ही आविष्कार था। शाश्वत स्वर 'अ' की प्राणप्रतिष्ठा सभी स्वरों और व्यञ्जनो में की। अक्षय ब्रह्मकी ध्वनिको व्यक्त करने के लिये समर्थ होगा, मानो यही सोचकर उस लिपिका सार्थक नाम 'ब्राह्मी' रक्खा गया। पुत्रियोने कौतहल से पूंछा कि 'इस लिपि का नाम क्या होगा?' आदिभगवान् ने कहा-'ब्राह्मी।' सुनते ही

दोनो बहनें खिलखिला कर हस पडी । दोनोने उनको झटसे सीख लिया और फिर सभी भाइयोने भी उसे पढ-लिख लिया ।

सुन्दरी को आदिभगवान्‌ने अङ्कविद्या सिखाई । उसीसमय उन्होने अङ्कोका आकार निर्धारित किया और गणित शास्त्रके बहुत-से गुर बताये । ज्योतिप विद्याका भी परिज्ञान कराया । सख्या और गणित पराकाष्ठाको पहुचा । आजभी ब्राह्मीलिपि और अङ्क गणित मिलते हैं; परतु उस आदिकालमे उनका रूप क्या था, यह जानने के लिए कोई साधन नही है ।

उक्त प्रकार ऋषभदेव जी ने अपने पुत्रो और पुत्रियो को सब विद्याओ और कलाओमे निष्णात बना दिया था । उनका गृहस्थाश्रम आदर्श और आनन्दमे भरपूर था । पुत्रिया पिता की महानता को देखकर चकित होती । एकदिन कौतूहलसे उन्होने पूछा—'पिता जी, एक बात बताइये । सारा संसार आपका महतो आदर करता है—आपके समान दुनिया में दूसरा कोई महान नही दिखता । इसका रहस्य क्या है ?' आदि भगवान मुस्करा कर बोले-'मनुष्यकी करनी ही उसको महान बनाती है । स्व-पर-कल्याण में जो अपनी शक्ति और समय लगाता है,वह महान बनता है ।'पुत्रियोने ताली बजाकर कहा-'अरे यही तो हम समझ रही थी । आपने दुनिया को सत्श्रम करनेका कल्याण-मार्ग बताया है इसलिये आप से बढ़कर दुनिया में दूसरा कोई नही है ।'आदि भगवानने यह सुनकर सिर हिलाया और बोले—'किन्तु अपने यहा एक प्राचीन परम्परा दामादको सर्व सम्मान देने की है । दामादको सबमे महान मानते है ।' ब्राह्मी और सुन्दरी ने यह सुना तो,परतु उनको यह बात रुची नही । दोनो सोचमे पड़गई और दोनोने एकसाथ कहा-'तो हमें विवाह करना इष्ट नही । हम ब्रह्मचारिणी रहकर कल्याण मार्गका अनुसरण करेंगी-वह हमें महान बना देगा!' ऋषभदेव पुत्रियोका निश्चय सुनकर प्रसन्न हुये और बोले 'बेटियो,तुम्हारा निश्चय तो प्रशस्त है, परंतु उसकी साधना कठिन है!' किन्तु दोनो बहनें अपने निश्चय पर दृढ और अटल रही । उन्होने विवाह नही किया, बल्कि अपने जीवन स्वपर कल्याणके हित मार्ग में लगा कर दिये ।

सार्वहित और समाजकल्याणके आदिसृष्टा

''उपविष्टस्ततो नाभिर्नाभेयश्च यथासनम् ।
ऋषभेन स्तोतुमारब्धाः प्रजाः प्रणतिपूर्वकम् ॥ २४५ ॥

+ + +

स त्वमेवविधो भूत्वा रक्ष नः क्षुत्पीडितान् ।
उपायस्योपदेशेन सिंहादिभयतस्तथा ॥ २५३ ॥''

—पद्मपुराण, पर्व ३

जिस समय आदि भगवान् ऋषभदेव अपनी सन्तान को उत्तम संस्कारो और सुविद्याओसे समलकृत कर रहे थे, उससमय उनके पिता दुखी प्रजाजनोको साथ लेकर उनके पास आये और समुचित आसनो पर बैठ गये। विवुध ने इस प्रकार ऋषभकथा को आगे चालू रक्खा। अलकाने यह सुनकर पूछा- प्रजाजनोको ऐसा क्या दुख था जो नाभि-राजा उनको लेकर भगवान् के पास आये?' विवुधने उत्तरमे कहा— 'अलका तुझे याद नही, वह समय परिवर्तन का था। भोगभूमिकी विधि विनश गई थी, इसलिये नई नई बाते प्रगट हो रही थी। भोले मानव उनको देखकर हैरान हो रहे थे।' 'हा हा, यह आपने कहा तो था। उससमयकी दशा कैसी थी? यही बताइए।' अलकाने पूछा।

विवुधने कहा—'उससमय कल्पवृक्षोके नष्ट हो जानेसे सारी पृथ्वी विना जोते-वोए ही अपने आप उत्पन्न हुये धान्यसे सुशोभित हुई थी—मानव उनका उपयोग करना जानता न था। वह इक्षु जैसे नरकुलसे स्वतः झरते हुये रससे ही क्षुधाकी तृप्ति करता था। लोक व्यवहार और घरगृहस्थीकी बातोसे भी वह अनभिज्ञ था। उस पर

वनके पशु भी अब क्रूर हो गये थे वह भी उसको त्रास दे रहे थे। ऐसे ही अनेक कारणो से भयभीत और दुखी होकर प्रजाजन मार्गदर्शन के लिए भगवान् ऋषभदेव के पास आये थे।'

'यह तो मैं समझी! '-अलकाने कहा और फिर पूछा-'किन्तु यह बताइये कि वह धान्य अपने आप कैसे उग आया? पहले तो पाषाण का युग था।'

'तुम्हारी शङ्का ठीक है, अलका!' विबुधने कहा। 'किन्तु इसमे आश्चर्य करनेको कोई बात नही। वनस्पति शास्त्रका ऐसा नियम है कि अनेक प्रकार के वृक्षो के बीजोको प्रकृति भूमिके वक्षस्थल में पाषाणावशेष (fossils) रूपमे सुरक्षित रखती है और समय आने पर वे ही उग आते है। आज भी वनो मे जगलो (स्वतः उगे हुए) चावल, गेहूँ आदि धान्य मिलते हैं।'

अलकाने अपनी स्मरणशक्ति को ताजा करते हुये कहा-"ठीक कहते है आप। वर्षात् में अनेक प्रकार की वनस्पति स्वतः उग आती है, जिनके बीज दिखाई भी नही पड़ते।"

"हाँ, यही बात है, अलका?'-विबुधने अलका की बात को बढावा देते हुये आगे कहा—"तब मानवोने स्वत उगे हुये धान्य जो खाये तो वे उसे पचा न सके और रोगोने उनको घेर लिया—इसी कारण दुखी होकर वे लोग भ० ऋषभके पास आये थे।"

आदि भगवान् ऋषभदेवने मानवो पर दया लाकर उनको वनस्पतिका परिज्ञान कराया और जंगली गायोके स्तनोसे झरते हुये दूध का भी महत्व बताया। सबमे पहले उन्होने इक्षु (गन्ने) को बोकर उगाना सिखाया, इसलिए वह और उनका वश 'इक्ष्वाकु नामसे लोक में प्रसिद्ध हुआ था।

लोक जीवन की सुख सुविधाके लिए मानवकी मौलिक आवश्यकताओ की पूर्ति होना परमावश्यक हैं और मानव है क्या? जीवमात्र की मौलिक आवश्यकतायें उनकी जन्मगत सज्ञाओ की ऋणी हैं। प्रत्येक ससारी जीव आहार, भय, मैथुन और परिग्रह नामक चार सज्ञाओं से पीडित मिलता है। अत. सुखी और कल्याण वर्द्धक लोक जीवन के लिये इन सज्ञाओ के अनुरूप निवृत्ति परक जीवन व्यवहार

परमावश्यक ठहरता है। अलकाने विबुध की यह विवेचना ध्यायसे सुनी और बोली—'यह तो है ही, आदिभगवान्ने निस्संदेह लोकका बड़ा उपकार किया जो उन्होने लोकजीवन को वैज्ञानिक रीति-नीति पर ढाला था !'

'यही तो उनकी विशेषता थी'—यह कहते हुये विबुधने आदि भगवानकी सार्वहित और समाज कल्याण पूरक वार्ताको आगे बढाया। उन्होने कहा, 'चूंकि उस समय मानवके समक्ष भूख-शमन करने का प्रश्न सर्वोपरि था—खाद्य समस्या मुंह फैलाये हुए सामने खड़ी हुई थी—मानव किंकर्तव्यविमूढ था। ऐसे विकट समय मे आदिभगवानने मानवको श्रम करने की शिक्षा दी। उन्होने कहा—'तुम सब मिलकर श्रम करो, परस्पर सहयोग द्वारा भूमिको उर्वरा बनाकर अन्न उपजाओ। तुम्हारे सब कष्ट दूर होगे !'

ऋषभदेव की बात तो मानवोने सुनी, परन्तु वे उसके मतलब को बूझ न पाये। वे जानते ही न थे कि भूमिको कैसे जोता-बोया जाता है। अतः ऋषभदेव का हृदय द्रवित हुआ। उन्होने लोगो को हल बनाना सिखाया और उसे कृषि कर्म करने की शिक्षा दी। इस प्रकार उन्होने सामाजिक जीवन (Civic life) की नीव डाली और बताया कि सार्वहित के लिए मानव एक दूसरे को सहयोग देकर आजीविकोपार्जन करे—सहकारिता के द्वारा उत्पादन बढ़ाये और समान रूपमे उसका उपभोग करे। इसी समय बासोकी रगड़ से वनाग्नि उत्पन्न हुई। जिसे देखकर मानव भयभीत हुये, परन्तु ऋषभदेवने अग्निका ठीक प्रयोग करना भी लोगो को बता दिया। लोगोने अंधेरेमे उजाला पाया-वे प्रसन्न हुये।

आदिभगवान् ने सारे देशको अनेक प्रदेशो मे विभक्त किया, जिनमें मडलो, नगरो और ग्रामो की स्थापना की गई। अलका ! जरा सोच तो, नया घर बनाकर वह आदि मानव कितना सुखी हुआ होगा ?

'हाँ भाई' उसके सुखका क्या ठिकाना ?' अलकाने कहा—'और फिर आदि मानवने अपने मिले-जुले श्रमसे बीजको अङ्कुरित, वर्द्धित, पुष्पित और फलित होते हुये जब देखा होगा तब तो वह

चकित होकर नाच उठा होगा!'

'भोजन-प्राप्तिका यह कितना प्राकृत और सुगम-साध्य उपाय था।' विबुधने आगे कहा—'इसमे अन्य प्रकारके जीविकाके साधनों की अपेक्षा हिंसा भी कम थी। स्वत पक कर जब अन्न झड़ने को होता तब मानव उसका सग्रह अपने उपयोग के लिये करता है। अन्नके पौधे भी सब स्वतः सूख जाते है। ऐसे अन्नको खानेमें त्रस-हिंसा तो नाम को नही होती।'

'जी हां, वह तो आमिष भोजन मे होती है।'—अलकाने कहा विबुध बोला—'उस आदिकाल मे कोई आमिष भोजी था ही नही। भोगभूमिकालमें मानव पशुओके साथ एक मित्रकी भाति रहता था। भला, वह उनको मारने की बात कैसे सोच सकता था? अलबत्ता उसने गऊ-बैल आदि उपयोगी पशुओको पालना प्रारम्भ किया था। आदिमानव के समक्ष खाद्य-समस्या जो थी। पशुओं को भक्ष्य बना कर वह उसको अधिक विषम बनाने की गलती नही कर सका, क्योंकि ऋषभदेव ने उनको सही मार्ग दिखाया था। आज भी मानवके समक्ष खाद्य समस्याने सकट का रूप धारण किया है। किन्तु आज शासन उसका हल ठीक तरह से नही कर पा रहा है। क्योंकि अधिक अन्न उपजाये जानेकी ओर उतना ध्यान नही दिया जाता जितना आवश्यक है।'

'अजी' आज तो शासन मांस-मत्स्यादिको प्रोतसाहन दे रहा है!' अलकाने बीचमें बात काटकर कहा। विबुध बोला—'तभी तो आये दिन दुख बढ रहे हैं। 'जैसी करनी, वैसी भरनी' का सिद्धात बदल तो नही सकता। उसपर पशुओको जीवित रखकर माँस प्राप्त करने के लिए जितनी भूमि उनके लिए छोडी जाती है, उस भूमि पर उससे दसगुना अधिक अन्न व शाकभाजी उत्पन्न की जासकती है। यही कारण है कि आदिभगवानने मानवको अन्न शाक और फल उगाकर प्राकृतिक भोजन करने का पाठ पढाया और वह मानव पवित्र अन्न और मीठा जल पीकर सुखी हुआ था। कितना महान् उपकार था यह मानवका! इसीलिए तो मानवोने ऋषभदेवको आदिस्रष्टा ब्रह्मा और प्रजापति कह कर पुकारा था! धन्य थे वे!'

अलकाका हृदय भक्तिभारसे नम्रीभूत हो गया और उसने हाथ जोड़कर माथा नमा दिया। विबुधने आगे कहा, 'भ० ऋषभने मानवोंको ७२ विद्याये और कलायें सिखाईं, जिनका आरम्भ लिपि-विद्यासे किया और अन्तमें निमित्तज्ञान बताया। साथ ही मुख्यत: महिलाओ के लिए ऋषभदेव ने ६४ ललितकलायें बताई और सिखाईं। बर्तन बनाना, लोहेके औजार गढ़ना, कपडे बुनना आदि शिल्पकर्मों का भी उपदेश उन्हो ने दिया था। इन्द्र के सहयोग से उन्होने नयनाभिराम आवासगृहो से पृथ्वी को समलकृत कर दिया और बड़े बड़े बाजार भी खुलवा दिये। खेती बाड़ी से लोग आवश्यकतासे अधिक अन्न उपजा लेते थे और वे लोग जो दूसरी आजीविकाओ में व्यस्त थे अन्न उपजा नही पाते थे। अत: बाज़ार मे विनिमय द्वारा आदान-प्रदान की व्यवस्था चालू की। किसानोको बर्तन चाहिये और कुम्हारोको अन्न—दोनो परस्पर आदान-प्रदान करके आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते थे। जो असमर्थ थे और वृद्ध थे, वे आजीविका नहीं कर पाते थे। ऋषभदेवने उनको दान देकर सतुष्ट किया था। 'लोगोंको चार प्रकारसे दूसरोंका उपकार करने का मार्ग प्रशस्त किया था। उन्होने कहा-जो भयभीत हैं उन्हे अभय बनाओ। मानव कायर बनकर मानवता को विकसित नही कर सकता! जो अज्ञानी हैं उन्ह ज्ञाननेत्र दो, क्योकि कहा है कि:—

'ज्ञान समान न आन जगत में सुखका कारण।
यह परमामृत जन्म-जरा मृत्यु-रोग विदारण॥'

ज्ञानी हो सुख विलसता और विस्तारता है—अत: ज्ञानदान दो। पाठशालायें और पुस्तकालय खुलवाओ—अच्छी अच्छी पुस्तके खरीद कर पाओ और सस्थाओंको भेंट करो अथवा उनको अपने व्यय से प्रकाशित करो। संसारमे रोग और शोककी वृद्धि न हो, इसीलिए औषधालय खुलवाना उपादेय है। शुद्ध औषधियो का दान दो और जो भूखे-प्यासे हों उनको अन्न-जल दो। सराश यह कि वातावरण आनन्द और सुखकी भावनासे ओतप्रोत हो। वह तभी होगा जब मानव अपने लिए ही नही, बल्कि सबके लिए जीयेगा—दूसरेके सुख में अपना सुख मानेगा। जब मानवका पड़ोसी मूर्ख और दुखी है,

तब वह कैसे सुख पासकता है? पड़ोसीको बेबसी और पीड़ाका चीत्कार उसके जीवनमे भी कटुता ला देगा । अतः परोपकार की भावना अपने और सबके लिये सुखमय वातावरण सिरजने का उपाय है। जैसा बीज बोया जाता है वैसा ही वृक्ष उगता और फल मिलता है–यह एक मौलिक तथ्य है, जिसका पाठ आदिभगवानने मानवोंको पढाया था। परस्पर सहयोग और उपकार करना, मानवता का मौलिक शृङ्गार बताया था !'

अलका ने कहा—'सचमुच भगवान ऋषभने मानवको जीवनके मौलिक और अमर तथ्योका बोध कराकर सभ्य जीवन की नींवको सुदृढ बना दिया था !'

'निस्सदेह उन्होने मानवको सभ्य और शिष्ट बनाया था।' विबुधने अपनी बातको बढते हुए कहा। 'फिर ऋषभदेवने केवल समाज व्यवस्था को ही सुदृढ नही बनाया, बल्कि उन्होने राजनीति का मार्ग भी प्रशस्त बनाया था ।'

अलका ने पूंछा—'सो कैसे?'

विबुधने कहा–'वही तो मै कहता हूं, जरा सुनो। जब मानवो ने देखा कि ऋषभदेव उनके महतोपकारी है तो उन्होने उनको अपना अग्रणी और अधिनायक स्वीकार किया। राजा नाभिने जनमनकी अभिरुचिके अनुरूप उनका राज्याभिषेक किया। ऋषभ आदि सम्राट हो गये और तब उन्होने राजनीतिका आदर्श अहिंसा निर्धारित की! शारीरिक दण्डको उन्होने महत्ता नही दी, बल्कि हृदयमें अपराधके प्रति ग्लानि उत्पन्न कर देना उन्होने आवश्यक माना । 'हा, मा धिक'—इन तीन वाक्योमे उनकी दण्ड नीति समाप्त हो जाती थी और वह बडी कारगर होती थी, क्योकि उसकी चोट हृदय पर पडती थी, जो सहजमें ही हृदय परिवर्तन कर देती थी ।

राष्ट्रकी मौलिक इकाई उन्होने व्यक्तिको माना, क्योकि व्यक्तियो से ही राष्ट्र बनता है। अतः व्यक्तिके अहिंसक होने पर राष्ट्र भी अहिंसक होगा। जिसप्रकार अहिंसक व्यक्ति अपने पडोसीको कष्ट नही पहुचाता, बल्कि उसके सुख दुखमें उसका हाथ बंटाता है, इसीप्रकार अहिंसक राष्ट्र अपने पड़ोसी राष्ट्र से प्रेमका व्यवहार

करता है और उसकी कठिनाई में सहयोगी बनता है। इस प्रकार विश्वमें सुख शांतिके लिए अहिंसाको ही ऋषभदेवने आधार शिला निर्धारित की थी !'

'निस्सदेह अहिंसा तो जीवनका सलौना सच है।' अलकाने बात रोककर कहा—'और आजभी जो राष्ट्र इस नियम को पाल रहे हैं वे महान और सुखी है। भारत की अहिंसक विदेश नीतिने ही उसे महान् बनाया है। आज की अशान्ति इस अहिंसा नीतिका अनुसरण करने से शान्तिमे पलट सकती है।'

विबुधने कहा—'निस्सदेह अहिंसा वह अमृत है जो विरोध और विषमताके विषको मिटा देता है। ऋषभदेवने उसका प्रयोग मानव के अन्तस्तल से करने की शिक्षा दी। एक सच्चा नागरिक वही है जो सब प्राणियो से प्यार करना जानता है-जो स्वय जीता है और सबको जीवित रहने देने मे सहायक होता है। किसीके प्राण लेना तो दूर, वह किसी को पीड़ा भी नही पहुंचाता। वह अपने प्यार को अपने घर वालो और रिश्तेदारो मे बाट कर कुलधर्म का पालन करता है। अहिंसक माता की गोद मे उसे सबसे प्यार करने की शिक्षा मिलती है। किसीको सताना वह जानता नही। ऐसे अहिंसक मानवोके कुलो से जब ग्राम और नगर बसाये जाते हैं तो वे आदर्श ही होते हैं। उन ग्राम और नगरो मे स्वच्छता होती है, क्योकि कुलोके मानव ऐसे नागरिक होते है जो मैले-कुचैले रहकर हिंसा नही करते। शुद्ध खानपानसे उनके आचार-विचार भी शुद्ध होते हैं। ऐसे नागरिक ठीक रीति से ग्रामधर्म ओर नगर धर्म पालन करने के लिये अपनी ग्रामसभाओं और नगर सभाओ का निर्वाचन, सगठन और कार्य भी आदर्श रूपमे करते है। निजी स्वार्थ को तो वे पहले त्याग चुकते है। इस प्रकार नगरादि की व्यवस्था करके ऋषभदेव ने राष्ट्रधर्म का पाठ भी लोगो को पढाया था। उन्हो ने कहा था कि यद्यपि मानव अलग २ प्रदेशोके नगरादि में रहता और विविध प्रकार की आजीविका करता है, परन्तु वह शिष्ट मानव है—आर्य हैं- इस बात को वह न भूले। आर्य पुरुषो का राष्ट्र आदर्श वीरों—अहिंसको का राष्ट्र होना चाहिये। वह राष्ट्र अपनी उन्नति करे

ग्रौर आवश्यक हो तो पडोसी राष्ट्रो को समुन्नत बनाने में सहयोग दे। इस प्रकार वह स्वार्थी राष्ट्रवादी न बनकर अन्तर्राष्ट्रवादी (International) मानव बन सकेगा-ऐसे मानव ही लोकधर्म का ठीक ठीक निर्वाह कर सकेगे। तब यह सारा लोक ही एक कुटुम्ब जैसा हो जावेगा। आदिभगवान् ने जो यह 'वसुधैव कुटुम्बक' की स्वर्ण नीति लोगो को बताई तो वे बहुत ही प्रसन्न हुये ग्रौर उसी प्रकार उन्होने अपना लौकिक जीवन अहिंसा पर आधारित करके चलाया ! अलका ! कैसा पुण्यवान् ग्रौर भाग्यशाली था वह युग जब वसुधाका वक्षस्थल कही भी निरपराध रक्तसे रंजित नही किया जाता था—यही कारण था कि तब का वातावरण भी अभिशापो से मुक्त था।'

'सचमुच महा भाग्यशाली वे मानव थे जो सुख ग्रौर शांतिसे उससमय रह रहे थे।'—अलकाने बातको सराहा।

विबुध ने ग्रागे कहा— 'ऋषभदेव ने प्रत्येक राष्ट्र की स्वरक्षा ग्रौर उत्कर्ष के लिये मानवोके कर्म भी निर्धारित किये थे। प्रत्येक राष्ट्रको तीन वस्तुये आवश्यक होती है अर्थात् (१) संरक्षण, (२) संवर्द्धन ग्रौर (३) श्रम। इसके लिये ऋषभदेव ने मानवोकी मनो वृत्तियो का अध्ययन किया। जिनको साहस ग्रौर सरक्षण करने की शक्तिसे ग्रोत-प्रोत पाया उन्हें राष्ट्रकी रक्षाका कार्य सोपा गया ग्रौर उनका नाम 'क्षत्रिय' रक्खा गया। उन्हो ने जिन मानवो को अर्थ उपार्जन करने ग्रौर उसे राष्ट्रोपयोगी कार्यों में लगानेके लिये उदार कुशल ग्रौर साहसी पाया, उन को 'वैश्य' अथवा 'वणिक' नाम से पुकारा। ग्रौर जिन्होने राष्ट्र निर्माण के महती कार्यों में अपने को उत्सर्ग कर देने का साहस दिखाया उन्हें 'अन्त्यज' कहा। सभी मानव अपना अपना कर्म करते हुये एक मानव समाजके अङ्ग थे। उनका ग्राचार विचार एक था। इसीलिये उनके बीच कोई मौलिक भेदभाव नही था। सभी प्रेमसे रहते ग्रौर अपना अपना कर्म करते थे।'

'किन्तु भाई सा०, ब्राह्मण भी तो हुये-उनको क्यों छोड़ दिया?' अलका ने पूंछा तो उत्तर में विबुध ने बताया कि 'हां, ब्राह्मण भी

हुए परंतु उनकी स्थापना भ० ऋषभदेव ने नहीं की थी। उन को उनके सुपुत्र सम्राट् भरतने स्थापित किया था। भरत महाराज को जब अपने राष्ट्रीय उत्कर्षका नापतोल करनेकी इच्छा हुई–उन्होंने जानना चाहा कि अहिंसा तत्व का पालन किस प्रकार किया जा रहा है–तो उन्होंने सभी नागरिकोंको पुरस्कार देनेके लिये बुलाया। किन्तु राजभवन के मार्ग में घास एव पुष्पादि वृक्ष उगा दिये। आने के लिए एक पतलीसी पगडंडी भी थी। जो लोग पर पीड़ा न करने मे सावधान थे वे उस घासको रौंद कर नहीं आये–बाकी लोग घास को पैरो तले कुचलते चले आये। सम्राट् भरतने यह देखा और उन दयालु नागरिकोंका बड़ा सम्मान किया और उन्हें 'माहन' (हिंसा न करनेवाले) कहकर पुकारा। यही लोग कालान्तर मे ब्राह्मण नामसे प्रसिद्ध हो गये। उससमय भरत महाराजने प्रजा को बड़ा मार्मिक उपदेश दिया था!'

'क्या उपदेश दिया था?'—अलका ने पूछा।

विबुधने बताया कि 'भरत महाराज ने प्रजाका ध्यान उस घास की ओर आकृष्ट किया और उसे सावधान किया कि वह घासको निर्जीव न मानें—घासमें भी प्राण है। उसका ज्ञान मात्र छूने (स्पर्शन)की सीमा तक विकसित है। उसे धूप और पानी चाहिये, तभी वह बढ़ती है। सजीव पदार्थ ही बढ़ते हैं, निर्जीवमें बढ़ने को शक्ति नहीं है। अपने नन्हें जीवनमें घास भी कितना त्याग और सहनशीलता का परिचय दे रही है, इस ओर ध्यान दीजिये। मानव उसे पैरो तले कुचलता है–रौंदता है और काटता है, परन्तु घास चुपचाप सब कुछ सहन करती है! बदला लेने का रोष ही उसे नही होता–वह रूठकर उगना और बढना बन्द नही करती। उल्टे बराबर उगती और बढ़ती है–वह कभी मिटती नही। देखा, यह है घासके त्याग और सहनशीलताका महती परिणाम! अब वे मानव सोचें, जिनमें मनन करने की शक्ति है और जो घासको रौंदते और नोचते हैं कि उनसे घास कितनी अच्छी है। मानव घाससे परोपकार, त्याग और सहनशीलता का पाठ पढे! इसप्रकार पिता और पुत्रने आदि मानवों को अहिंसा-संस्कृतिमे शिक्षित और दीक्षित करके सभ्यताका

पाठ पढाया था। यही कारण है कि आदिभगवान् ऋषभ लोकहित और समाज व्यवस्था के आदिब्रह्मा कह कर पूजे जाते हैं–उन्होने प्रजाका वह सच्चाहित साधा जिससे वह अपना जीवन कल्याणमय बना सकी,इसीलिये वह सार्थक'प्रजापति'कहे जानेके अधिकारी थे!'*

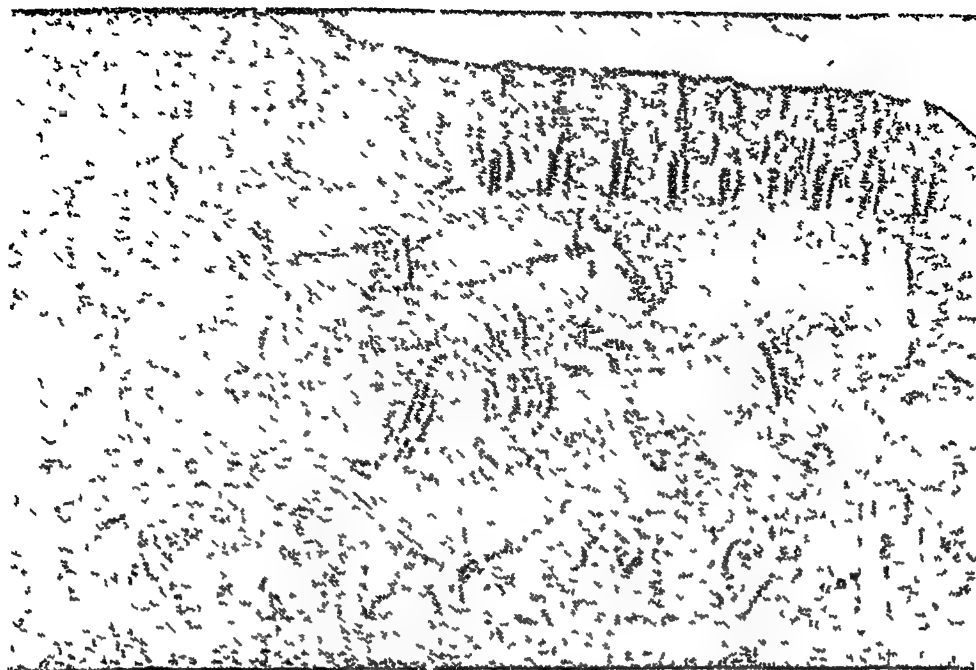
'निस्सन्देह भ० ऋषभदेव महान् थे!'–अलकाने माथा झुकाते हुये कहा और वह भ० ऋषभको लोक कल्याण-भावना एव सम्राट् भरतको निस्पृह वृत्तिका बार-बार चिन्तवन करने लगी। अलका ने सोचा-विचारा और जाना कि बाह्य सामिग्री से मानवको निराकुल सुख नही मिलता; बल्कि उससे तो प्रायः मोहममता, आसक्ति और संघर्ष बढता है। सुख तो निराकुल दशा का नाम है और चूकि निराकुलता समता या समभाव का ही दूसरा रूप है, इसलिये वह आत्माका पारिणामिक भाव-स्वभाव है; आत्माका गुण है। अतएव इस आत्मगुण(Quality)के विकसित होने से ही मानवका आत्म-कल्याण होता है बाह्य सामिग्री के प्रति ममत्व घटता है-अनासक्ति बढती है! निष्काम भावसे किया गया कार्य कल्याण कारी होता है। भ० ऋषभ का आदर्श उसे किस खूबी से मूर्तमान बना रहा है। यही सोचती हुई अलका और विबुध दोनो ही अपने २ कामोमें लग गये!



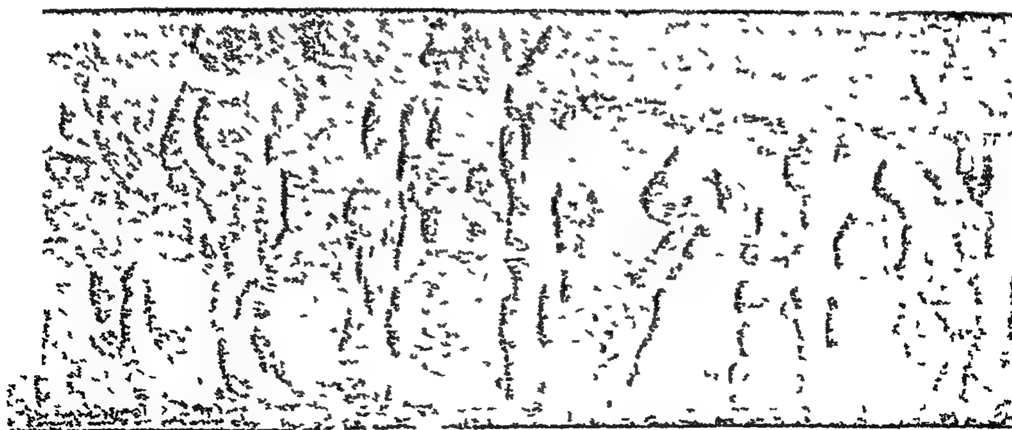
---

*'विधाता विश्वकर्मा च स्रष्टा चेत्यादिनामभि।
प्रजास्तं व्याहरन्ति स्म जगतां पतिमच्युतम् ॥२६७॥'

—महापुराण १६



तीर्थंकर भगवान की माता जी
(देवगढ किला मंदिर सं० ४)



नीलांजना का नृत्य, मथुरा
(लखनऊ संग्रहालय)





प्रथम प्रजापति का विराग

५ नीलाजना अप्सरा का नृत्य देखते हुये, जिसके अक्समात् शरीरान्त से वैराग्य हुआ।

६ लौकान्तिक देवो ने आकर ऋषभ के वैराग्य की सराहना की।





उनकी तपस्या और निर्वाण

७ घोर तपस्या मे लीन महान् योगी ऋषभ वट वृक्षकी साया मे सर्वज्ञ सर्वदर्शी लोक गुरु हुये।

८ कैलाशपर्वतमे शिवतत्व को पाये हुये ऋषभ की वदना सारा लोक कर रहा है।

गृह त्याग और तपस्वी जीवन !

चेत्ता सिद णवमीए तदिए पहरम्मि उत्तरासाढ़े।
सिद्धत्थवणे उसहो उववासे छट्ठमम्मि णिक्कंतो ॥६४४॥'
—तिलोय पण्णत्ती ४.

विबुधने आदि भगवान् के लौकिक-जीवनकी महत्ता प्रदर्शित कर दी थी, किन्तु इससे तीर्थङ्करत्व की विशेषता और उद्देश्य का स्पष्टीकरण नही हुआ था। इसीलिए अलकाने विबुधसे पूंछा कि 'एकबात उसकी समझमें नही आरही हैं। अपने पूर्व जन्मोमें भ० ऋषभ देवके जीवने राज्यभार और शासनके ऐश्वर्यको हेय समझकर त्यागा था तो फिर वह इस जन्ममें जबकि उनको तीर्थङ्कर होना निश्चित था, किस प्रकार लोक व्यवहार में ही मग्न रहे ?'

विबुधने उत्तरमें कहा—'अलका तुम्हारी शङ्का ठीक है; परन्तु तुमने एक बात पर ध्यान नही दिया। तीर्थङ्कर सार्वभौम विश्वगुरु होते हैं—वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को अपने दिव्य ज्ञानसे प्रकाशित करते है। यह जीव अनादिकालसे कर्मके बधनमें पड़ा हुआ, अपनी सुध-बुध खोये हुए है। तब यह कैसे सभव है कि वह एकदम अपनी भूलको पहचान ले। क्या तुमने उस सिहके बच्चेकी घटना नही सुनी जो भेड़ोके बीचमें रहनेके कारण अपने आपको ही भूले हुए था?'

'हां हां, मुझे याद है !'—अलकाने कहा

'याद है तो भूलती कैसे हो ?'—विबुधने उसकी स्मृतिको ताजा करने के लिए कहा। 'क्या सिहका बच्चा एकदम अपने को पहचान

सका था ?' 'नहीं तो। पहले जब उसने बहते हुए पानीमें अपनी परछाई देखी तब उसे यह शङ्का हुई थी कि वह तो भेड़ोसे भिन्न दिखता है !'—अलका ने बताया।

'यहही बात ससारी जीवकी हो रही है'—विबुध ने कहा—'क्यो कि वह अपने साथियो से अपने को विलक्षण नही समझ पाता। जिस प्रकार सिहके बच्चे के लिए बहता हुआ पानी उसको परछाई का बोधक हुआ, ठीक उसी प्रकार ससारी जीव के लिए भी ससार सागर की परछाइया—लोक व्यवहार की छलनायें—इष्ट वियोग और अनिष्टयोग की घटनाये आत्मबोध कराने में सहायक सिद्ध होती हे। अतएव आत्मोत्थान के लिए लोक के व्यवहारिक जीवन को अहिंसा के अमृत से सीचकर समुज्ज्वल बनाने का कार्य वैसा ही महत्वपूर्ण है जैसे कि नीव की ईट। जब तक प्रवृति में विवेक भाव जागृत न होगा मनुष्य यह समझ ही न सकेगा कि क्या उपादेय है? और नश्वर शरीर से उसका क्या नाता है?'

'यह तो आप ठीक कहते है। सिहके बच्चेने जब एक दिन सिंह को साक्षात देखा तभी उसे अपने स्वरूपका बोध हुआ था।'-अलका ने कहा।

'हां, यही तो चोजकी बात है'-गंभीर होते हुये विबुधने बताया।

'मानव जबतक लोक प्रवृतिको सुधार नही लेता और आपा-परका भेद-विज्ञानी बननेके लियें उन्मुख नही होता तबतक निवृति मार्ग की ओर बढते हुये डरता है। जब विवेक भाव जगता है तो वह चोकन्ना हो जाता है और मानता है कि इच्छाओ के इशारे पर नाचना उसका स्वभाव नही है। फिर सद्‌गुरु के प्रसादसे वह अपने स्वरूपके दर्शन करने में स्वय समर्थशील होता है। अत. प्रवृतिको सर्वथा हेय कहकर उसकी ओर से वेखबर हो जाना भी अहितकर है-ऐसे मनुष्य ससार को छलनाओ में फसकर दुखी होते हे। समुद्र तट पर खड़े होकर देखो तो दूर छोर पर आकाश और पृथ्वी एक मेक हुये दिखते हैं, किन्तु यदि उस क्षितिजको छूनेका कोई प्रयत्न करे तो वह असफल ही रहेगा। यदि यह सत्य प्रवृतिमे भूले हुए मानव को न बताया जावे तो वह परमार्थ की सिद्धि नही कर सकता।

गृहस्थाश्रम का आदर्श जीवन होना मुनिधर्म की सिद्धि के लिये आवश्यक ही है। फिर आदिकाल का मानव तो निरा भोला भाला था—वह जीवनकी कर्मठता से अछूता था- इसीलिये आदि भगवान ने पहले उसे विश्वका एक सच्चा नागरिक—अहिंसक वीर बनने का पाठ पढ़ाया था ?'

'अहा, अब समझी ! कैसी विलक्षण सूझ थी भगवान की' अलकाने प्रसन्न होकर कहा।'श्रावक संघके बिना निवृत्ति परक साधु मार्ग चल ही कैसे सकता है ?'

'यह भी बात है, किन्तु सर्वोपरि बात तो जीव की अशुद्ध दशा है।'- विबुधने आगे कहा—'इस समय जीव शुद्ध नहीं है। वह शरीरके बंधनमें है और वह बंधन ऐसा सुहावना और इतना पुराना है कि जीव को वह बन्धन ही नहीं लगता। जीव की शरीर बुद्धि हो रही है जिसके इशारे पर उसका मन बन्दर जैसा नाच रहा है। उसीमें वह मग्न है। अतः परिस्थितिके अनुकूल ही शिक्षा उपयोगी होती है। जब शरीरका सम्बन्ध अनादि कालीन है तब शरीर गतमनोवृत्तिके चरमोत्कर्षका दु:खदपरिणाम देखकर ही उससे विरक्ति होगी। अतः मानव की जीवन प्रवृत्ति अधिक से अधिक सुखप्रद बने यह पहला जीवन तथ्य सिद्ध होता है आदिभगवान् ने इसीलिये सब से पहले मानव को श्रम कर के सुख-शान्ति पूर्ण जीवन बिता के उसे समृद्धिशाली बनाने का मार्ग बताया था। इस प्रकार के समृद्ध और अहिंसा से परिप्लावित वातावरण अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव मे मानवका भविष्य समुज्वल होना सुगम साध्य होता है। अतः पहला कदम जीवन सुधारके लिए यही है कि मानव प्रेम पूर्वक पारस्परिक सहयोग द्वारा जीवन यापन करे। इसीलिये ऋषभदेव ने सबसे पहले मानव को सदप्रवृत्ति करने का पाठ पढाकर उसे सभ्य और शिष्ट मानव बनाया था। 'सज्जन बनकर ही मानव अपना और अपने साथियोंका कल्याण करनेमे समर्थ होता है'-आदिभगवान् ने मानव को यह जीवन-तथ्य सिखाने के लिये ही स्वयं अपने सदाचरण से उदाहरण उपस्थित किया था।'

'कथनी से करनी प्रभावक होती ही है।' अलकाने यह कह कर

भगवान् ऋषभके प्रवृत्ति निर्मापक और निर्णायक कार्यों के प्रति संतोष व्यक्त करते हुये, विवुधसे उसकी बात आगे बढानेको कहा।

विवुध बोला–'महापुरुषोंके कार्य महती लोकोपकार के लिये होते हैं। आदिभगवान् के जीवनका बहुभाग जब सभ्यता और समाज निर्माणके कार्योंमें बीत गया, तो उनके जीवनका करवट बदलना कुछ आवश्यक-सा हो गया। इन्द्रको आशङ्का हुई कि भौतिक-सुख-सामग्री के चका-चौंध मे मानव इस भूतल को कहीं नरकधाम न बना दे–वासनामे लोक अनीतिकी ओर न भग उठे ? इसीलिए इन्द्रने देखा कि उसे धर्मका तात्विक ज्ञान होना आवश्यक है। उसपर भ० ऋषभ का जन्म ही धर्मतीर्थकी स्थापनाके लिये हुआ था। अतः इन्द्र स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरा। देवोपनीत उपहार लेकर ऋषभदेव के समक्ष उपस्थित हुआ और नीलाञ्जना नामक अप्सराका नृत्य आरंभ कराया। नृत्य भी साधारण नृत्य न था–स्वर्ग लोककी सर्वोपम सुन्दरी और नृत्यकलामे अद्वितीय निष्णात अप्सरा नृत्य कर रही थी। सभी नृत्य की भावभगिमा और सगीतके सुरोले स्वरकी मधुरिमा मे अपने-को खोये हुए थे। इसी समय अचानक नीलाञ्जना अप्सराका आयुकर्म निःशेष हो गया-उसका रूप आकाश-धनुष की तरह विलीन होने लगा! इन्द्रने यह भाप लिया और रगमें भंग न हो जाय इसीलिए नीलाञ्जनाके स्थान पर दूसरी वैसी ही अप्सरा को उपस्थित कर दिया–दरबारियोंने इस सूक्ष्म परिवर्तन को जान न पाया–किन्तु आदिभगवान्‌की सूक्ष्म आत्मदृष्टिसे यह बात कैसे ओझल रह सकती थी ? उन्होंने अपने दिव्यज्ञानसे जान लिया कि नीलाञ्जनाको देखते देखते काल कवलित कर गया है। संसारमे कालका चक्र निर्बाध चलता है–उसके प्रभावसे कोई बच नहीं सकता है। ऋषभ यह देखकर लोकसे विरक्त हो गये। उनके भावोंकी निर्मलताने मनोवर्गणाओं को इतना प्रशस्त और प्रकर्ष बना दिया कि उनका प्रभाव (Personal Magnetism) सारे लोकमें व्याप्त हो गया! देवेन्द्र उत्सव मानने के लिये पहले से ही मौजूद था!

लौकान्तिक देवगण स्वर्गों के उदासीन-ब्रह्मचारी समझिये–तीर्थङ्कर भगवानके विरक्त भावसे आकृष्ट होकर वे उनके निकट

आये और उनके वैराग्यकी सराहना करके ब्रह्मलोक को वापस चले गये। उधर देवनिर्मित पालकी पर आरूढ होकर आदिभगवान तिलक नामक उद्यानमे पहुचे। वह चैत्र कृष्ण ९ का पवित्र दिन था कि ऋषभदेवने अपने भरतादि पुत्रोंको राज्य सौंपा और स्वय माता-पिता से अनुमति लेकर वनकी ओर प्रयाण किया। उनका यह महानिष्क्रमण परमोच्च त्यागका पहला ज्वलन्त उदाहरण था। राज्य वैभव को छोडकर चलदेना कोई साधारण कार्य न था! कहां राजा, कहा एक भिखारी! परतु त्यागका आनन्द और आदर अनूठे होते है। उनकी तुलना भला कोई क्या करेगा?'

'त्याग तो पूजने की चीज है!' अलकाने बीचमे कहा। विबुध ने बताया—'त्यागकी ठीक पूजा उसे भावोमे भर लेने पर है। ऋषभ देवने त्याग धर्मकी सच्ची उपासना की। इसीलिए वह तिलक उद्यान 'प्रयाग' कहलाया। वहा प्रशस्त त्याग मूर्तमान हो पूज्य जो बना था और वह सिद्धिका महान अनुष्ठान भी था—इसलिये उसे 'सिद्धार्थ' भी कहते हैं।'

'उस उद्यानमे एक विशाल वट-वृक्ष था। उसकी सघन छायामें इन्द्रने स्फटिक-मणिका सुन्दर शिलासन सुलभ कर दिया। ऋषभदेव ने उसके निकट पहुचकर वस्त्राभूषण उतार कर फेक दिये—लज्जा को जीत लिया—कामको धता बता दिया। 'नमः सिद्धेभ्य.'—कहकर जिनदीक्षा धारण कर ली। शरीरसे भी उनको ममता न थी, इस लिए उन्होने पञ्चमुष्टियो द्वारा केश उखाड़कर फेंक दिये। इन्द्रने उन केशोको रत्नमई पिटारेमे रख लिया और तदनन्तर मस्तक पर रखकर उन्हे क्षीरसागरमें क्षेप आया। उससमय त्याग और वैराग्य का वातावरण छा गया। भगवान को दिगम्बर साधु हुआ देखकर उनके अनन्य भक्त चार हजार शासक भी नगे होकर साधुभेष में घूमने लगे, परतु वे साधुताके उद्देश्यको न समझ पा रहे थे। जो ऋषभदेव को करते हुए देखते वही करने लगते थे!

आदिभगवान ऋषभदेवने उस वटवृक्षकी छायामे खड़े होकर ध्यानकी एकाग्रतामें अपने को खो दिया। तत्क्षण उन्हे मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हुआ—अब वे दूसरे के मनकी बातको भी सहजमें जान लेते

थे। परंतु उन्हें अभी दूसरेसे प्रयोजन क्या था ? उन्हें तो अपना आत्म-शोधन करना अभीष्ट था—अपने मनको साफ-साफ कर निर्मल बनाना था—काम क्रोधादि मलको धो डालना था। अतः उन्होने शक्तिको आका और उसे महान पाया। इसप्रकार अपनी शक्तिको देखकर उन्होने संकल्प किया कि वह छै महीनेका कायोत्सर्ग-उपवास धारण करेंगे, अनशन व्रत पालेंगे। जो उन्होंने सोचा वही उन्होने किया! निर्जन वनमें निशङ्क होकर लगातार छै महीने तक ध्यान माढे खडे रहे! धूप-छाह गर्मी सर्दी लू-लपट, रिमझिम बौछार अथवा मूसलाधार वर्षा, माह-पूसके जाडे, हिम-पात और झझावात-ऋतुके सभी सम-विषम परिवर्तनो में वे चुपचाप खडे रहे-धूल धूसरित नगे तन पर उन्होने सभी कठिनाइया सहन की।

'वे कठिनाइया थी तो भगवानने उनको जानबूझकर क्यो सहन किया?' अलकाने पूछा। इसपर समाधानके लिए विबुधने उत्तर दिया कि 'मोक्षमार्ग के पर्यटकको कठिनाइयो से भय नही होता। जिसे दिल्ली जाना है वह यात्राके कष्टोकी परवाह नही करता। किन्तु मोक्षमार्ग में जो कठिनाइया दिखती है, वे हमारी अपनी कमजोरी की सूचना देती है। मुमुक्षु का ध्यान भी उनकी ओर नहीं जाता। वह कठिनाइयो को बुलाने के लिए साधना नही करता—वह तो स्वाधीन होनेके लिए साधक बना है। भ० ऋषभदेव उस साधना मे ठीक आगे बढ रहे थे। उनकी तपस्या विवेकपूर्ण थी। वह उसके उद्देश्यको जानते थे और आत्मविजयी बनने के लिए अग्रसर थे। किन्तु उनके साथियो की साधना ऐसी न थी!

'तो फिर उनकी साधना वैसी क्यो नही थी?'-अलकाने पूछा। विबुधने बताया-'इसलिये नही थी कि उन्होने उस उद्देश्यको समझे बिना मात्र ऋषभदेव की नकल की थी। जब उन के साथी साधुओ ने देखा कि भगवान् तो ध्यान में अपने को खो बैठे है। आखे है, परन्तु वे उनसे देखते नही— नासाके अग्रभाग पर ही उनकी दृष्टि जमी हुई थी। कानो पर उन्हो ने हाथ नही रक्खे थे, फिर भी वे कुछ भी सुनते नही थे। मौनसे रहते थे और बडे २ उपवास करके आत्मशोधन करते थे। किन्तु उनके साथी इस तथ्यको जानते न थे।'

'इसका अर्थ तो यह हुआ कि किसी को उपवासादि धर्मकर्म करते देखकर उसकी नकल नही करना चाहिए।' अलका ने अपनी बात कही, जिसके उत्तर मे विबुध ने बताया कि 'बिना समझे-बूझे कोई काम नही करना चाहिए। विवेक-विहीन साधना निरर्थक ही नही घातक भी होती है। बकरोके गले मे स्तन जैसे व्यर्थ है वैसे ही भाव हीन साधना का कुछ भी मूल्य नही होता, उल्टे उस के कारण मनुष्यका पतन होना सभव है। आदि भगवान् के साथियोका पतन ही हुआ!'

'अरे! उनका भी पतन हुआ?-अलका ने प्रश्न किया तो विबुधने कहा—'हा, व्रत-उपवास के स्वरूपको न समझने का परिचय दुखद होता ही है। उस पर अपनी शक्तिको तौले विना ही हल्की या भारी साधना में लग जाना भी हानिकर है। सब से मुख्य बात साधना में सच्ची श्रद्धा है। श्रद्धासे वस्तुस्वरूपका बोध होता है और तब आचरण भी ठीक ठीक होता है। भगवान ऋषभ के साथ जिन राजा लोगोने साधु भेष धारण किया था, वे इस रत्नत्रयधर्मसे शून्य थे। इसी कारण वे भूख-प्यासकी बाधाको सहन न कर सके-सरदी-गरमी की मुसीबतको झेल न सके, किसी ने पेडोके वल्कल बसन पहन लिये और कोई नगा रहकर बनके फल-फूल और कन्दमूल खाने लगे! इन मे मारीचि प्रमुख था, जो भ० ऋषभ का पौत्र और सम्राट् भरतका पुत्र था। मारीचि उन सभी पथभ्रष्ट साधुओका नेता बन गया। इन्द्रने सम्बोधा तो भी उसने अपना हठ छोड़ा नही! उसे गुरु बनने का अहकार था और वह गुरु बन गया—अपने भावो का सम्प्रदाय उसने अलग बना लिया—किन्तु सत्य से वह बहका रहा। इसका प्रायश्चित उसके जीव ने अन्तिम तीर्थंकर भ० महावीर हो कर दिया! ज्ञान और अज्ञान, प्रकाश और अधकार—जीवनके दो रूप है। इनकी आख मिचौनी जब पूरी होती है तभी हमें ज्ञानालोक मे सुख और शान्तिका अनुभव होता है!

योग और भोग का सघर्ष सामान्य सघर्ष नही है। योगीको भी महान पराक्रम करना होता है—जीवनके प्रत्येक क्षण मे वह बख्तरबन्द सैनिककी तरह ध्यान-कवचको धारण किये हुये इन्द्रिय

विषयो और वासनाओं से जूझता रहता है। किन्तु उसका पुरुषार्थ राग-द्वेष से रहित प्रशस्त होता है। ऐसे ही महान् शूरवीर भ० ऋषभदेव थे। जब वह कायोत्सर्ग माढे खड़े थे तब एक दिन कच्छ और महाकच्छ के पुत्र नमि और विनमि आये और बोले- भरतादि को राज्य दिया है तो हमें भी दीजिये!" ऋषभ तो दुनियाकी सभी बातें छोड चुके थे-उन राजपुत्रोंकी यह बात उनकेकानसे टकरा कर रह गई; क्योंकि उनकी श्रवण शक्ति तो अन्तर्नादको सुननेके आनन्द में मग्न थी। उपयोग अन्तरमुखी जो हो रहा था। नमि और विनमि की बात सुनता कौन? किन्तु फिरभी वे अपनी रट लगाये ही हुये थे। वे भोगके भक्त थे। असमता को पनपा कर विषमता सिरज रहे थे। किंतु इतने पर भी महापुरुषकी निकटता उनके लिए सुखद सिद्ध हुई। नागेन्द्रने आकर उनकी मांग पूरी की। नागेन्द्र उन दोनों भाइयोंको विजयार्द्ध पर्वत पर ले गया और उसकी दोनो श्रेणियो का अधिपति उनको बना दिया। कुछ विद्यायें भी उनको दीं। नमि पचास प्रदेशोका और विनमि साठ का अधिकारी हुआ। उनका वंश 'विद्याधर' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। उन्होने यातायातकी सुविधाके लिये विमान बनाये, जिसके कारण वे 'नभोगामी'—'खेचर' भी कहलाते थे। वे दोनो आदिभगवान के अनन्य भक्त थे।'

था कि एक साधुको नवधाभक्ति पूर्वक किस प्रकार आहार दिया जाता है। जनताका अज्ञान उनके लिये अन्तरायका कारण बना! किन्तु उनको रचमात्र भी ग्लानि या विषाद न था। वह वनको लौट आये और फिर छै महीने के लिए ध्यानमें लीन हो गये। इस घटना ने स्पष्ट कर दिया कि व्यक्तिका अभ्युत्थान समिष्टि के ज्ञान और सहयोग की कितनी अपेक्षा रखता है। व्यक्तिगत धर्मका पालन उस समाजमें ही ठीक ठीक हो सकता है जिसके सदस्य ज्ञानी और विवेकी हो। अत: सम्यक् ज्ञानका प्रचार जनतामे करना परमावश्यक है— जीवमात्र को सम्यक् ज्ञानका अमृत पिलाकर समरसी बनाना सुख और शातिका साम्राज्य इस भूतल पर स्थापित कर देना है। मध्य-कालमे जब भारत पर मुसलमानो का अधिपत्य छा गया, तब यहा की पूर्वपरम्परायें नष्ट हो गईं। जैनाचार्योंका प्राय. अभाव हो गया— जनताको सभ्यजीवन का बोध कराने वाला कोई न रहा! गुजरात और दक्षिण भारतमें कुछ रहे तो आज भी वहा के जन जीवन मे अहिंसादि, जैन तत्वोका प्रभाव दृष्टि पडता है। अत: जैनोको जन सधारणमे नई शैलीसे धर्म तत्वका प्रसार करना परम कर्तव्य है!'

'निस्सदेह भाई सा०, आजके मानव को सत्य और अहिंसा को समझाने की अत्यन्तावश्यकता है। शिक्षितवर्ग को जैन दृष्टिकोण को जान लेने को तीव्र जिज्ञासा है। परतु उनको साहित्य नही मिलता।'—अलका ने टोका।

विबुध अपनी बात कहता गया—'यह एक बडी कमी है, जिसकी पूर्ति होना आवश्यक है। भ० ऋषभनाथ ने एक ऐसा आदर्श उपस्थित करने के लिए त्याग और वैराग्यका जीवन स्वीकार किया था। छै मासका उपवास उन्होने पुनः इसलिए माडा कि वह अन्तरङ्ग के शत्रुओं को भी जीत लें—क्षुधा और तृषा जैसी शारीरिक कमजोरियो को भी जीत लें।'

'किन्तु विना खाये-पीये शरीर स्थिर कैसे रह सकता है?'—अलकाने शङ्का की। विबुध मुस्करा कर बोला—'यह भावना ही तो हमे कमजोर बना रही है। खाना और पीना जीवका स्वभाव नही है—वह तो कर्मकृत उपाधि है। जब कर्मों को जीत लिया तब शरीर

की दशामें भी अन्तर आ जाता है—उनकी स्थिरताके लिए कवलाहार आवश्यक नहीं रहता। आज भी कभी २ ऐसे उदाहरण मिलते है कि जिनमें व्यक्ति कई वर्षों तक खाये-पीये विना जीवित रहे हैं। जब कार्य का कारण नही रहता तब उसका परिणाम देखने को कहा से मिले ?'

'यह तर्कसिद्ध बात है।'—अलका ने बात को दुहराया। किन्तु विबुध कहता ही गया—'ऋषभदेव को भूख की बाधा जरा भी न सता सकी, किन्तु जिनका शरीर बुद्धि थी, वे उसे सहन न कर सके थे। निस्सदेह ऋषभदेवकी तपस्या महान् थी, जिसने उन के शरीर की कान्ति को चमका दिया था। जब वह ईर्या सोमतिसे चलते थे तो उनके कधो पर उड़ती हुई जटायें किरणो की भांति सुशोभित दिखती थीं। लोग उन्हें 'केशिन' भगवान् कहकर पुकारते, परन्तु वे तो मौन थे। इन्द्रियजयी भ० ऋषभ छै मासतक कायोत्सर्ग मुद्रामे सुमेरु पर्वत के समान निश्चल खडे रहे। लोग देखते और अचरज से कहते—'यह तो महादेव हैं! इनके समान और है कौन?'

जब पूरा एक वर्ष बीता तो ऋषभदेव का ध्यान उचटा। वह धर्ममर्यादा के प्रचालन के लिए एक नगर की ओर चले और चलते चलते हस्तिनागपुर पहुच गये। दोपहर का सूर्य भगवान् के आत्म प्रकाश के सामने हीनप्रभ हो रहा था। हस्तिनापुर के निवासी उनके रूप सौन्दर्यको देखते ही सुध् खो बैठे। वह भेंट लेलेकर उन की ओर दौड़े, किन्तु यह किसीको भी न सूझा कि यह मध्यान्ह की वेला है—भगवान्को आहार देना चाहिये। उसी समय राजा श्रेयास ने अपने महलकी छत पर से भगवान्को देखा और देखते ही उनको अपने पहले जन्मों की याद आ गई। पहले भी तो उन्होंने मुनियो को आहार दिया था। उनका ज्ञान निर्मल हो गया और उस में गत जीवन की सचित स्मृतियां एक-एक कर के चलचित्र के समान सामने आने लगी। झट से राजा श्रेयास महल से नीचे उतरे और भगवान् को नमस्कार करके उनका आह्वान किया। आहार की विधि जानकर नवधा-भक्ति सहित ईखके मधुर रस का पारणा भगवान् को कराया। वह वैशाख शुक्ल तृतीया का शुभ दिवस था,



भ० ऋषभदेव और सम्राट श्रेयांश

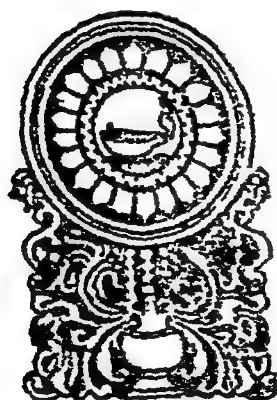
(भ० ऋषभदेव को सम्राट श्रेयांश अपने भाई और धर्म पत्नी के साथ इक्षु-रस का आहार दे रहे है।)

जब इस अवसर्पिणीकालमे सबसे पहले श्रेयांसराजा ने आहारदान देकर दान-प्रथा का श्री गणेश किया था । आहार के समय सुन्दर कान्तिवाले रत्नोकी वर्षा देवोनेकी थी—लगता था कि श्रेयांस राजा को अक्षयनिधि मिल गई । अपने भाई सोमप्रभ के साथ यह दान देकर वैशाख शुक्ल तृतीया को श्रेयास नरेश ने एक राष्ट्रीय पर्व ही बना दिया । वह आज भी 'अक्षय तृतीया, के नाम से प्रसिद्ध है ।'

'इसीको अखतीज कहते है ?' अलकाने पूछा तो विवुधने 'हा' कहा ; परतु वह कुछ आगे कहे इसके पहले ही अलकाने कहा—'महापुरुषोके कार्य महान् होते है । श्रेयास राजाकी जीवात्मा महान थी ; तभी तो उनको पूर्वजन्मका स्मरण हो गया था और उनको आदि-भगवान जैसे महान तीर्थंकर को प्रासुक आहारदान देने का सुयोग मिला था । किंतु यह वताइये कि उन्होने किस प्रकार नौ विधियो या भक्तियो का पालन किया था?'

विवुधने उत्तर मे कहा—'अलका, तुम्हारा यह प्रश्न बड़ा उपयोगी है । मुनियो को आहार देते समय नौ बातोका ध्यान रखना आवश्यक होता है । वे बातें ये है (१) संग्रह—पड़गाहना, मुनिको आता हुआ देखकर अपने द्वार पर प्राशुक जलका लोटा लिये हुए कहना, 'अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, तिष्ठ आहार जल शुद्ध है ।', (२) उच्चासन—जब मुनि उसके पड़गाहन पर ध्यान दें तब उनको अपने घरके भीतर ले जाकर ऊंचे आसन पर बैठाना चाहिए; (३) पग प्रक्षालन—फिर किसी पात्र (वरतन) मे उनके पैर धोना चाहिये; (४) पूजा—अष्टद्रव्य से पूजना; (५) प्रणाम-तीन प्रदक्षिणा देकर प्रणाम धोक देकर करना; (६) फिर मनशुद्धि (७) वचनशुद्धि और (८) कायशुद्धि की घोषणा करना और (९) अन्तमें कहना भोजन शुद्ध है-प्रवेश करें । भोजन शुद्धिका अर्थ प्रमुखरूपेण यह है कि वह भोजन 'औद्देशिक' अर्थात् स्वय मुनिमहाराज के लिए नही बनाया गया है, बल्कि श्रावक ने जो आहार अपनी गृहस्थीके लिए शुद्ध विधि से बनाया है उसीमे से अतिथिको दिया जा रहा है । मुनिका आहार तो भ्रमरवत होता है । जैसे भौरा फूलसे रस लेलेता है परतु उसको

बाधा नही होती, ऐसी ही मुनियोंकी चर्या होती है । श्रेयांस नृपने अपने ज्ञानसे उसे जाना और उस समय सर्व सुलभ और सर्वश्रेष्ठ देय-पदार्थ जो इक्षुरस था, वही आदिभगवान को प्रदान किया, क्योंकि एक वर्ष के लगातार किये उपवासके पश्चात् वह आहार ले रहे थे । इसीलिए इक्षुरसके समान सहज-पाच्य और तृषाको शमन करने वाला तरल-पेय का आहार देना उपयुक्त था । मुनियों को आहार देते समय ऋतु एवं उनकी शारीरिक स्थितिका ध्यान रखना आवश्यक होता है । श्रेयांस महाराज विचक्षण थे—इन्होंने इस बात का ध्यान रक्खा । उपरान्त भगवान् फिर वनको चले गये ! विबुध और अलका भी अपने २ काममें लग गये ।



केवलज्ञानका प्रकाश।

'फग्गुण किएहेयारस पुव्वरहे पुरिमतालणयरम्मि।
उत्तरसाढे उसहे उप्पण्णं केवल णाणं ॥६७९॥'

—तिलोयपण्णत्ती ४

दूसरे दिन जब विबुध और अलका स्वाध्याय–कक्ष मे बैठे तो आदि भगवान् के कल्याणकारी जीवन चरित्र की चरचा करने लगे। विबुध बोला-'देखा अलका, ऋषभ भगवान् कैसे लोकोपकारी थे? उन्होने अपने आदर्श जीवन से यह बता दिया कि दिगम्बर मुनियों का व्रताचार कैसा होता है? उन्हे किस प्रकार आहार दिया जाता है? गुरुओ को दान देना और जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करना, यह एक श्रावकका मुख्य कर्तव्य है। दान और पूजाका पालन किये विना कोई श्रावक हो ही नही सकता।'

अलकाने कृतज्ञता ज्ञापनके स्वरमे कहा–'निस्सदेह आदिभगवान् ने पहले तो मानव को सभ्य और शिष्ट बनाया और फिर उसे धर्मात्मा बननेका मार्ग भी सुझाया, यह उनका महान् उपकार था। किन्तु आजकलके लोग सत्यमार्ग से बहक रहे हैं। ऐहिक जीवन को सुख सुविधा में वह निरीह सत्य को भूला रहे है! जिस शरीर को आराम पहुँचाने के लिये वह जाने क्या क्या कर्म नही करते, वह शरीर भी अन्तमें उनका साथ नही देता-इस बातमे वह बेखबर हैं।'

विबुधने बात को लेते हुये कहा— इस बेखबरी ने ही तो मानव समाजको दुखके गर्तमे डाल दिया है। आजका मानव यह भूल गया

है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने अच्छे-बुरे कर्मों के अनुसार ही सुख-दुख पाता है। सुख का बीज ही वह नही बोवेगा तो उसे सुख कहाँ से मिलेगा? ऋषभ भगवान ने इसलिए कह कर नही, बल्कि करनी करके मानव को उसके कर्तव्य पालन का बोध कराया था। मानव का कर्तव्य है कि वह स्व और पर-दोनोका हित साधे। 'स्व' उस का आत्मा है और सर्व निकट 'पर' उसका शरीर है। इन दोनोका हित साध कर ही वह इस योग्य बनता है कि फिर अपने कुल, ग्राम, नगर, देश और विश्व का हित साध सके। ऋषभदेव ने किसी भेद भाव के बिना सब ही प्राणियोका हित साधने के लिये विद्याओं और कलाओंका आविष्कार किया और फिर संयम मार्ग का आदर्श भी सबके लिये रक्खा।'

'मार्ग का निर्माण सब के लिए ही होता है और वही भ० ऋषभ ने किया, यह आप बता चुके हैं।' अलका ने टोका।

विबुध ने कहा—'वही तो मैं कह रहा हूँ। भ० ऋषभ के आदर्श को नमूना बनाकर मनुष्य एक समर्थ विश्व नागरिक बनने का अधिकारी है। मनुष्यके कर्मों पर ही उसका वर्तमान और भावी जीवन का निर्माण होता है। भ० ऋषभदेव का जीवन यही तो बताता है। व्यक्ति स्वय ही अपनी परस्थितियो का निर्माता है। ऋषभदेव ने नियमित सयम का पालन किया तो वह आत्मोन्नति के पथ पर आगे बढते गये। इसके विपरीत उन के साथी अज्ञान के कारण सयम का महत्व नही समझ पाये तो दुखी हुये। संयम और तप-त्याग ही सफल जीवन की आधार शिलायें हैं। आदि भगवान् यह सब कुछ जानते और मानते थे। इसीलिये वह फिर ध्यान में लीन हो गये।

'एक तीर्थंकरके आदर्श जीवनमें पूर्णज्ञान पानेकी घटना अपूर्व है-यह केवल ज्ञान-कल्याणक ही है जो उनको सर्वज्ञ-सर्वदर्शी तीर्थंकरके सर्वोच्च आसन पर विराजमान करता है। ऋषभदेवने अपने पूर्व जन्मोंमें इतना तपश्चरण किया था कि उनके लिये तीर्थङ्कर होना अनिवार्य था-बीज ही ऐसा बोया था जिसका फलित होना अवश्यम्भावी था। पूर्णज्ञान आत्माकी अपनी निधि है, किन्तु शरीर

के वन्धनने उसको सीमित बना दिया है। अतः ज्ञानको सीमित करने वाले आवरणोको हटा देने पर ही आत्मा अपनी ज्ञान निधि को विकसित करने मे सफल होता है। उसे पाचो प्रकारसे विश्वास हो जाता है कि वह शुद्ध कैवल्यमय पूर्णज्ञान पिंड है। उसका आत्मा कर्मोंसे आवद्ध और आस्पृष्ट नही है। भले ही वह अनादिकाल से कर्म-वद्ध हुआ इस ससारमें रुलता दिख रहा हो, किन्तु मूलत' अपने स्वभावमें वह स्वाधीन चैतन्यरूप है। सरोवर मे उस कमल-पत्र को, अलका, तुमने झूमते हुए देखा था—जल उसे चहु ओरसे आबद्ध और आस्पृष्ट किये हुए था-उसे थप्पड भी मार रहा था-फिर भी क्या वह कमलपत्र उस सरोवर जलसे भिन्न नही था ?'

'अवश्य भिन्न था!'—अलका ने उत्तर दिया।

'ठीक ऐसे ही आत्मा भी कर्म-मलसे भिन्न—अछूता रहता है, यद्यपि ससारमें रहने के कारण वह कर्मके थप्पड़ोको सहता हुआ भी दिखता है।'-विवुधने कहा। अलका बोली—'लालची हलवाई जैसे दूधमें पानी मिला देता है तो दोनो एक रूपमे आबद्ध और आस्पृष्ट हुए दिखते हैं परतु वास्तवमे दूध दूध रहता है और पानी पानी—निर्णायक यत्र बता देता है कि कितना दूध है और कितना पानी। ऐसे ही समझिये संसारी जीवकी अवस्था।'

'बिल्कुल ठीक यही बात है अलका!'-विवुध ने हर्षित होकर कहा। वह आगे बोला-'आदिभगवानने इस तथ्यको पहचान लिया था। और जान लिया था कि चार घातिया कर्मोने आत्माको आकिचन बना दिया है—उसे अपनी अक्षयनिधि से वञ्चित कर दिया है। ज्ञानावर्णीय घातिया कर्मने उसके ज्ञान गुणको ढक दिया हैं। दर्शनावरणीय ने दर्शन देखने की शक्ति पर आवरण डाल रक्खा है। मोहनीय घातिया कर्मने उसे अज्ञानाधकार मे ऐसा ला पटका हैं कि वह अपने स्वभाव को भूल रहा है—सच्ची प्रतीति उसे हो हो नही पाती। और अन्तरायने उसके वीर्य और उसके आनन्द आदि गुणोके विकासमें बाधा खड़ी कर दी है। भ० ऋषभने जव वस्तु-स्थितिको पहिचाना तो वह इन कर्मोंसे जूझने लगे थे। एक वर्षकी कठिन तपस्यामें उन्होने कर्मोको खपा ही नही दिया बल्कि ध्यान

थे उन्हें भस्म कर दिया !'

'आत्मानुभूतिका अर्थ ही यह है, भइया ! फिर ऋषभदेव तो आदिभगवान् थे !'—अलका ने बड़े गौरव से कहा।

'हां'—विबुधने कहा—'ऋषभ भगवान् की आत्मानुभूति अपूर्व थी उनकी अन्तरदृष्टि परम सूक्ष्मदर्शी थी। संसारी जीवकी नाना पर्यायोंमें भी उनके विवेकनेत्र आत्माको बिल्कुल अस्पृष्ट और अनन्य देखते थे। जब वह राजा थे तब उन्होंने मिट्टीको नाना रूपमें घडकर बरतन बनाने का आविष्कार लोगों को बताया था—घड़ा, मटका, सुराई, प्याला, कुंडी-सभी बरतन अलग अलग दिखते थे, परन्तु उन सबमें वह एक ही मिट्टी थी, यह वह भूले न थे। संसारी जीव की पर्यायबुद्धि उसे दुख देता है। वह पर्यायको आपा मानने की गलती करता है। भगवान् ने इस भ्रांतिकी धज्जियां बहुत पहले ही उड़ा दीं थी। उन्हें तो अपना शुद्ध-बुद्ध चैतन्य स्वरूप शरीरसे बिल्कुल भिन्न और निराला दिखता था ! निराला इसलिए कि वह अक्षत और नियत था। चौपाटीकी सैर करते हुये इस तथ्यको हमने अपनी आंखों से देखा था। याद है अलका ?'

अलका ने हर्षातिरेकसे कहा,-हां, हां, समुद्रकी लहरों का भाग कर अपने तटप आंखमिचौनी खेलना बड़ा ही भला लगता था !'

'परन्तु यह तो तुमने उसका बाह्यरूप देखा !' विबुध ने गहरी चुटकी लेकर कहा—'उसका अन्तर रूप भी तो देखो। आदि भगवान् ने उसे देखा था और उसकी तुलना मानो अपने आत्म भावोंसे की हो! आत्मामें भी नाना प्रकार की भाव-लहरें उठती हैं, परंतु उन के पीछे अभेद चैतन्य की छटा सदा एक सी ही रहती है; जैसे समुद्र ! समुद्रका जैसा खारा है वैसा ही संसार-सागर का जीवन रूपी जल भी कषायोंके कारण कषैला होरहा है।- उसका एक विशेष रूप सा बना दिख रहा है, परन्तु यथार्थ में आत्माका अमर जीवन अविशेष और असंयुक्त है। जब समुद्रजलको ज्येष्ठमासके सूर्यकी तप्त किरणें ऐसा तपा देती हैं कि उस की काया-पलट हो जाती है—खारी पानी बादल बन जाता है, तब वह खेतोंमें जाकर मीठा अमृत सा बनकर बरसता है। यह है तप तपने का प्रत्यक्ष प्रमाण ! आदि भगवान्

के ज्ञान मे यह छिपा न था। इसीलिए ही तो उन्होने घोर तप तपा था और कर्मो को क्षय करने का महती पुरुषार्थ व्यक्त किया था।'

बिलकुल ठीक कहते है आप भइया! वे ऋषभेश्वर महान् थे।'- यह कह कर अलका ने मस्तक नमा दिया।

विवुधका हृदय भी भक्ति भावसे द्रवित हुआ और मस्तक श्रद्धा से झुक गया। कुछ रुककर विवुधने फिर अपनी बात कहना प्रारभ की। वह बोला- 'देखा अलका, समीचीन सत्यको आदि भगवान् ने किस खूबी से पहिचाना था। स्थूल नेत्रो से उन्होने जीव को ससार की वासनाओ मे लिप्त देखा-देखा वह गिरगिटकी तरह क्षण-क्षणमें रंग बदलता है—उसका बाह्य शरीर भी बदलता है और भावो में भी रग-विरंगा परिवर्तन होता है। कभी कृष्ण लेश्या रूप भाव हुये तो हिंसा-वृति में ही उसे मजा आता है-जड़ से ही वृक्ष को उखाड़ फेंकनेमें उसे आनन्द भासता है! 'न रहेगा बास न बजेगी बांसरी'- परन्तु वैर से वैर नही मिटता यह सत्य वह भूल ही जाता है। आगसे आग ही भडकेगी। कुछ यह आभास हुआ तो उसके नील-लेश्या जैसे भाव होते हैं। वह प्रतिपक्षी को मिटा डालने की घृष्टता को भुला देता है। फिर भी उसके मनमें क्रोधादि कषायो का विष छल छलाता हुआ दिखता है—वह जड़से पेड़को न काटेगा तो उसके बडे बड़े गुद्दोको काटकर ठुंडा कर देगा। यह भाव भी उसे दुर्गति के दर्शन कराता है। कदाचित उसकी कापोत (भूरी) लेश्या हो गई तो उसके क्रोधादि दुर्भावों में कुछ और रोकथाम हुई दिखती है। वह तब पेड़को ठुंडा करने से डरता है—फिर भी शाखों और टह- नियों को तोड़ते हुये उसे डर नही लगता। हिंसक भाव उसे परेशान करता ही है। हां, इसके आगे जब वह पीत, पद्म और शुक्ल लेश्यायों में उतरता है तो उसकी काया पलट हो जाती है। शरीरकी आकृति भी सुन्दर और सौम्य होती है और भावो में भी दयाधर्म की तर- तमता हिलोर लेती है-उसे अपने आत्मस्वभावका बोध होता है और वह अपने स्वभाव और प्रकृति की देन में ही सतोषी होकर जीवन बिताता है। वृक्षकी सायामें बैठा हुआ जो फल स्वतः पक कर टपक पड़ा उसी को लेनें में उसे आनन्द आता है। यह है संसारी जीवकी

लोक प्रवृत्ति जो उसे शरीरके घिनौने सम्बन्धसे अशुद्ध बनायेहुये है। वह मोहममताके अज्ञान मे अपने को बन्दी माने हुए है, किन्तु वन्दी भी तो मूलमें स्वतन्त्र मानव ही होता है। वह चाहे तो बंधन को तोड दे। ऋषभदेवने चाहा तभी वह बन्धनको तोड़नेमें लग गये!'

'अच्छा, अब यह बात मेरी समझमे ठीक आई, भइया!'-अलका ने कहा तो विबुधने पूछा कि 'क्या' उसने बताया कि-'स्थूल रूपमें अथवा संसारी अवस्था में भले ही जीव अशुद्ध और वन्दी दीखे, परतु सूक्ष्म द्रव्य दृष्टि से देखें तो वह अपने रूपमें सदा स्थिर है, इसीलिए वह शुद्ध है और स्वाधीन है । परन्तु इस द्वैध सत्य को पहिचान लेना सुगम नही है !'

विबुधने कहा-विवेक भाव जगने पर मनुष्य सत्यका पारखी बनता है। तब उसे पक्षपात नही रहता। वह वस्तुको प्रत्येक संभव दृष्टि-कोणसे देखता और विचारता है। याद है अलका, जब पहले-पहले हम लोग श्रवणबेलगोल गये और बाहुबलि गोम्मटेश्वर भगवान की विशालकाय (५७ फीट ऊंची) अखड मूर्तिके सामनेसे दर्शन किये तो चकित हो वही स्याभितसे खडे रह गये ! मूर्तिकी विरागमई मुस्कान ने हृदय को निस्पृह आनन्द भावसे आडोलित कर दिया। जब उनके चरणो में पहुचकर भक्ति-पुष्प अर्पित करने को झुके तो उनकी महानता का आभास हुआ-हम हाथ उठाकर छुयें तो भी उनके घुटनो तक ही पहुँचे। किन्तु जब उनको बगल से दर्शन किये तो मुखाकृति और शरीर की सुडौलता का आभास हुआ।- पीठको जो देखा तो एक समान-भावकी जागृति हुई। और जब मस्तकाभिषेक के निमित्तसे उनके विशाल मस्तकके पीछे खड़े होकर उनकी मोहक मुखाकृतिकी छविके दर्शन किये तो लगा कि हमने उनको पा लिया है-हमारे और उनके बीचका भेद मिट गया है। हृदय ने दूसरे क्षण गुनगुनाया.—

> 'मन मिलियहु परमेसरहु, परमेसरहु मणस्स ।
> बेऊ भिन्न समरस थया, पुज्ज चड़ावहुं कस्स ?'

यह अद्वैतभाव ही कार्यकारी है और इसकी सिद्धि स्याद्वाददृष्टि से-सापेक्ष दृष्टिकोण से वस्तुका अध्ययन करने से होती है। मूर्ति

के एक-एक अंशके दर्शन उसका समग्र-संपूर्ण दर्शन नही करा सकते वैसे ही वस्तुके एकान्तरूपका दर्शन उसकी समग्रता का बोध करनेमे असमर्थ होता है। भ० ऋषभने इस अनादि सत्यके दर्शन अपनी ध्यानावस्थामे किये थे—यही कारण था कि वे कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो सके थे !'

मानव अपनी बुद्धिका द्वार खुला रखकर सापेक्ष-दृष्टि को अपनावे और हृदय को सकीर्ण पक्षपात की दीवारों का आधार न बनने दे, तो वह सत्यको पा लेता है और सुखी होता है।' अलकाने कहा। विवुध यह सुनकर खुश हुआ और आगे भ० ऋषभकी तपस्या को लक्ष्यकर कहने लगा—'उक्त प्रकार पूरे एक वर्ष तक ध्यानारूढ रहकर भ०ऋषभने तपश्चरण किया था। एकदिन वह विहार करते हुये पुरिमताल नामक स्थानके समीप शकट नामक उद्यानमे पहुंचे। आज इस पुरिमताल नगरका पता लगा लेना कठिन है। फिर भी इतना अनुमानित है कि वह कैलाशकी ओर हिमांचल प्रदेशमे होना चाहिए। गढवाल जिलेमे पौरी-श्रीनगर मे एक अत्यन्त प्राचीन जैन मन्दिर है और वहा आदिभगवानकी मनोज्ञ प्रतिमा भी है। 'पुरिम' का अपभृष्ट रूप 'पौरी' दिखता है। 'ताल' नामान्तक नगर जैसे नैनीताल, तल्लीताल आदि उधर मिलते है। अतः यह बहुत संभव है कि भ० ऋषभ जिस पुरिमतालके शकट उद्यान मे पहुचे थे, वह पौरी ही हो। यद्यपि आजकल प्रयागके वटवृक्षको भगवानका केवल ज्ञानोत्पतिका वृक्ष कहा जाता है।'

'हा, यह बहुत संभव है क्योकि पौरी (गढवाल) प्रयाग की अपेक्षा कैलाश के अधिक निकट है। कैलाश ही मुख्यतया ऋषभ की तपोभूमि और समवशरणगत प्रचार भूमि था। अतः इस पौरी तीर्थ का उद्धार होना चाहिये।'—अलकाने सुझाव दिया जिसकी सराहना करते हुए विवुध बोला—'यदि श्रीमान् लोग नये मन्दिर और मूर्तियां बनाने के स्थान पर इन प्राचीन स्थानो का उद्धार करे तो महती धर्म प्रभावना हो और उन्हे पुण्यबंध भी !'

'किन्तु आज तो धनिक वर्ग ख्यातिलाभ के मोहमे इस ओर ध्यान नही देता !'—अलकाने निराशा से कहा। किन्तु विवुधने आगे

आदिभगवान् का पतितपावन चरित्र वृतान्त चालू रक्खा । वह बोला—'जिसदिन भ० ऋषभदेव शकट उद्यानमें पहुंचे थे वह फाल्गुण कृष्ण एकादशीका पावन दिन था। उस वनमे वह एक सघन वटवृक्ष के नीचे ध्यान माढकर बैठ गये और क्षायिक श्रेणीका आरोहण करने लगे। पूर्वाण्हका समय हुआ—उत्तराषाढ नक्षत्रका योग मिला। द्रव्यकाल और क्षेत्रकी अनुकूलताने भावोको निर्मल होने मे अनुकूलता उपस्थित करदी, किन्तु भगवानका दिव्य पुरुषार्थ उनकी अपेक्षा नही रखता था। शुक्लध्यानके प्रभावसे उनके सवरभाव और तपश्चरण में चार चाद लग गये। सबसे पहले मोहनीयकर्म का विनाश हुआ—वही तो आत्मप्रतीति मे बाधक था। और उसके नष्ट होते ही ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म भी नष्ट हो गये। सभी घातिया कर्मोका क्षय हो जाने पर उन्हे लोक और अलोकको प्रकाशित करने वाला केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया। अब वह साक्षात सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, जीवन मुक्त परमात्मा बन गये। उन्हें तीर्थङ्कर कहना सार्थक हो गया।'

'धन्य थे वे भगवान जिन्होने मानव जीवनके चरमलक्ष्य पूर्ण मुक्तिको प्राप्त किया— भोलेभाले लोगोने उनके महान व्यक्तित्व में परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन किये !'—अलका बोली।

विबुध ने कहा—'वे आदि मानव बड़े भाग्यशाली थे जिन्हो ने अपने चर्म- चक्षुओ से आदि जिनेन्द्र के दर्शन किये थे। वह दर्शन भी सामान्य न था, क्योंकि केवलज्ञान के साथ ही बहुत भारी भामण्डल भी उत्पन्न हो गया था—भगवान्के शरीरगत परमाणुओ में भी आमूल चूल परिवर्तन हो गया था—तैजस शरीर की प्रकर्षता ने भामण्डल (Auora) के प्रकाशको ऐसा प्रदीप्त किया कि उनके पास दिन- रातका भेद ही न रहा। तीर्थङ्कर ने क्षेत्र और काल की सीमाओ को जीत लिया था। उनके ज्ञान मे त्रिकाल और त्रिलोक की सभी बातें प्रत्यक्ष झलकती थी। सहस्राधिक सूर्य भी उस प्रकाश के सामने हत प्रभ हो रहे थे। जहा पर भगवान् को केवल ज्ञान हुआ, वहीं एक सुन्दर अशोक वृक्ष उत्पन्न हो गया। वह देवताओं की भक्ति प्रतीकका था—उसमे रत्नमयी फल लगते थे। देवोने आकाश

से सुगन्धित मन्दार आदि पुष्पो की वर्षा की और हर्ष से दुन्दुभि बाजे बजाये। चमरेन्द्रो ने चमर ढोरे और त्रिलोक शेखरता को व्यक्त करनेके लिये उनके मस्तक पर छत्रत्रय लगाये। उनके लिये सुन्दरकमल से सुशोभित सिहासन भी रचा गया। उस सिहासन पर अधर बैठे हुये भ० ऋषभ इतने सुन्दर लगते थे कि शब्दो मे उस का वर्णन करना असभव है!

अवधिज्ञानके के द्वारा भगवान् ऋषभको केवलज्ञान हुआ जानकर सब इन्द्र अपने अपने देवपरिकर सहित प्रभू की बन्दना करने आये और उन्होने भगवान् की धर्म देशना के लिए एक बड़ा ही सुन्दर कलामय सभामण्डप रचा,जो समवशरण कहलाता था। जहां जहा भगवान् का विहार होता, वहा वहा ही देव इस समवशरण की रचना कर देते। विहार मे भी इन्द्र उनके संघके आगे आगे धर्म चक्र और धर्मध्वज को बड़े गौरव से धारण किये हुये चलता था। धर्मप्रकाशके फैलानेमे योग देकर इन्द्रने अपने को अमर कर लिया! उसी समय भरत सम्राट् के सौभाग्य का उदय हुआ—उन्हें एक साथ ही पुत्ररत्न, चक्ररत्न और पिता को केवलज्ञान-रत्न उत्पन्न होने के शुभ संवाद मिले। उन्होने जिनेन्द्र भगवान्की वन्दना करना आवश्यक समझा और वह वन्दना-पूजा करने भगवान् की शरणमें पधारे! देवेन्द्र नरेन्द्र और असुरेन्द्र—सभी ने मिलकर भगवान् की वन्दना और पूजा करके अपना जीवन सफल किया।'

'निस्संदेह साक्षात् जीवन मुक्त परमात्मा के दर्शन में करके वह सफल जीवन हो गये, परन्तु भाई! आज हममें कितने है जो धर्मप्रकाश फैलानेके लिए इन्द्र-तुल्य क्रिया करने को उत्सुक हो?'-अलकाने व्यङ्ग किया तो विवुधने कहा—'आजके लोगो की बात न कहिए-इन्द्र बनना तो बड़ी चीज, अरे वे धर्मश्रद्धालु बने रहें तो ही गनीमत है।' और दोनो ही उसदिन फिर अपने कामधधे मे जा रमे।



धर्मचक्र प्रवर्तन और विहार।

'अथासौ भगवान् ध्यानी शात कुम्भप्रभः।
हिताय जगते कर्तुं दानधर्मं समुद्यतः॥'

—*श्री रविषेणाचार्य।*

विबुध जब दूसरे दिन स्वध्याय-कक्षमें पहुंचा, तो अलकाने उस से भगवान् के समवशरण की वात पूंछी। विवुध ने इस पर कहा-समवशरण देवताओ द्वारा निर्मित तीर्थङ्कर भगवान्का सभागृह होता है। 'सम' और 'अवसर' शब्दोको लिये हुए समवशरण सबही जीवो को कल्याण के लिए समान अवसर प्रदान करने वाले स्थान का सूचक है। वहां समता भावका साम्राज्य छाया रहता है। तभी तो वहा पहुचकर जन्मजात विरोधी जीव भी अपने वैर को भूल जाते और परस्पर प्रेमसे रहते है। उस का वाह्य सौन्दर्य तो अद्वितीय होता है, वह देवों की कलाकृति जो है। भ० ऋषभके सभाभवन का विस्तार वारह योजन का था। उसके चारो मुख्य द्वारो पर चार मानस्थभ थे, जिनको देखते ही अभिमानियो का मान गलित हो जाता था। चैत्यमदिर पक्ति, स्तूपपक्ति, ध्वजापक्ति आदि शोभा कृतियो के पश्चात वारह सभाओ से घिरे हुये गंधकुटी में सिंहासन पर अन्तरीक्ष विराजमान भ० ऋषभ अद्भुत शोभा को व्यक्त कर रहे थे। पुरिमताल के नरेश वृषभसेन सबसे पहले भगवान् की शरण में आये और धर्मदेशना सुनकर बोलेः—

'अरहंत सरणं पवज्जामि!'

भगवान् ऋषभदेवने उनको मुनिदीक्षा दी–वह पहले गणधर हुये। सम्राट् भरत अपने छोटे भाई की इस विराग-वृत्तिसे बहुत ही प्रभावित हुए। वह मुनि तो न हो सके, परन्तु श्रावकके व्रत उन्होंने भी ग्रहण किये। ब्राह्मी और सुन्दरी भी वन्दना करने आईं थी। वे पहले से ही ब्रह्मचर्य व्रत पाल रही थी। भगवान् के संघमें वे पहली आर्यिकायें हुईं। श्रुतकीर्ति पहले श्रावक और प्रियव्रता पहली श्राविका बनी। यह देखकर और भी अनेक जीवोने व्रत नियमादि ग्रहण किये। वे सब उन व्रतोके कारण 'व्रती' कहलाये–कोई कोई उन्हे व्रात्य भी कहता था। आदिभगवान् ज्येष्ठ जिन भी कहे गये और 'ज्येष्ठ व्रात्य' अथवा 'महाव्रात्य' भी!

'भइया! वह समय अपूर्व था-तभी तो वृषभदेव की धर्मामृत-वर्षा हुई थी। धन्य था वह इन्द्र जिसने भगवान्को लोकहित साधने की प्रेरणा की!'-अलकाने कहा। विबुध बोला–'इसमे कोई शक नही कि इन्द्रने धर्मप्रभावना के लिए कोई कसर बाकी न छोड़ी थी। इन्द्रकी प्रार्थना पर भ० ऋषभदेव ने इस अवसर्पिणी कालमें सबसे पहले धर्मचक्र प्रवर्तनका महान् अनुष्ठान किया। उनकी पहली धर्म देशना बड़ी सफल हुई–भरत जैसे सम्राट् उनके शिष्य हुए।'

'न जाने वह पहली धर्मदेशना क्या थी?'–अलकाने जिज्ञासा की। उत्तरमे विबुध ने कहा–'ऐसी बात नही कि जैन श्रुत-परम्परा मे उनकी पहली धर्मदेशनाका रूप सुरक्षित न रक्खा गया हो!' यह सुनकर अलका बहुत प्रसन्न हुई और उत्कण्ठासे पूंछने लगी– 'तो भइया, बताओ भगवान् का पहला उपदेश क्या था?'

विबुधने कहा–'ऋषभदेव का वह उपदेश 'गीता' नामसे प्रसिद्ध हुआ था। 'भूवलय' ग्रंथमे उसकी कुछ गाथाये दी हैं। उसकी पहली गाथा निम्न लिखित थीः—

"अट्ठविह कम्मवियलाणिट्ठिय कज्जा पणट्ठ ससारा
दिट्ठ सयलत्थ सारा सिद्धम् मम दिसन्तु॥

'इससे स्पष्ट है कि भ० ऋषभने पहले ही संसारसे छूटने के लिए आठ प्रकारके कर्मबन्धन से मुक्त होने का उपदेश दिया था, जिससे साधकको सकल पदार्थोंमे सारभूत सिद्धिकी प्राप्ति हो; साधक सारभूत

सुख ही तो चाहता है। भगवान् ने उसे सुख पाने का मार्ग बताकर महतो कल्याण किया।'

'सचमुच उनसा लोकोद्धारक महापुरुष होना दुर्लभ ही है।'–अलकाने हर्षातिरेकमे कहा। विबुध यह सुनकर भी अपनी बात कहता रहा–'तीर्थंकर अपने व्यक्तित्व मे निराले होते है। वह वस्तुस्वरूप का परिज्ञान स्वय नमूना बनकर कराते है। कैलाशपर्वत पर पहली धर्मदेशना उनकी हुई तो उन्होने भरतको लक्ष्य कर कहा, 'सम्बोधी को प्राप्त करो! अरे, अपने को क्यो नही बूझते? इस मनुष्य जन्म के पश्चात सम्बोधीको पाना दुर्लभ है। जो दिन बीत चुके वे लौटेगे नही और दूसरी बार मनुष्य जन्म पाना भी सुलभ नही है। अरे देखो, जवान बूढे और गर्भका बालक सभी तो मरणको पाते है! जैसे पक्षी कोडेको दबोच लेता है, वैसे ही आयु पूरी होने पर यह जीवन समाप्त होता है। माता-पिताकी सेवासुश्रूषा मे कष्ट उठाना शिष्टाचार है, परतु इस क्रिया से पूर्णसुख पाना कठिन है। मोहको त्यागे बिना सुख मिलता नहीं, क्योकि इस लोकमे प्रत्येक प्राणी को अपने कृत कर्मोंका फल भोगना ही पडता है। जैसा अच्छा-बुरा कर्म-रूपी बीज बोया जाता है वैसा ही फल हाथ आता है। चाहे राजा हो और चाहे रक—सभीको समानरीति से कर्मफल भोगना पड़ता है। चाहे जितना ऐश्वर्य हो, चाहे जितना बाहुबल हो, चाहे जितने रिश्तेदार हो और चाहे जितने भोग भोगनेको मिल रहे हो किंतु आयु-कर्मके प्रहारसे कोई भी नही बचता—काल सभीका अन्त करता है। अत हे मानव! तू भ्रातिको छोड! स्व-समय को पहिचान और पापोसे विलग हो! जीवन का अन्तर अवश्यम्भावी है-निश्चित है। वे धर्मवीर जो पापो से भयभीत होकर वासनाओ से विरक्त होते और अपना तथा पराया कल्याण करते है अवश्य ही सुखको पाते है। अहिंसा सयम और तप ही सुखके साधन है। मनको संयमरूपी रेणुसे माजिये और अहिंसाके जलसे धोकर साफ कीजिए। फिर उसे तपमें तपा लीजिए। तब आत्मा सौ टच सोने से भी सुन्दर और शुद्धरूप मे चमकेगा।' भरत और उनके भाई यह सुनकर प्रसन्न हुये और व्रतोको धारण किया।

जो बहुत से राजा ऋषभदेव के साथ दीक्षा धारण करके भ्रष्ट पथके अनुयायी हुये थे, उनको लक्ष्य करके ऋषभदेवने कहा—"नगे होकर कायाको कृष करनेसे मुक्ति नही मिलती—मोही चाहे जितना कायाको तपाये, उसे सिवाय कायक्लेश के कुछ भी हाथ न आयेगा ! पहले मानव अपने को पहिचाने-भेदविज्ञानी बने और तब व्रताचरण करे। जीवमात्र को अपने समान मानकर उनके प्रति करुणा और मैत्री भाव रक्खे। सम्यक् पुरुषार्थ करके पापो को जीते-क्रोधादि कषायो का दमन करके योग-साधन करे। कर्मबन्धन को तोड़कर मुक्त-मानव बने ! आन्तरिक शुद्धि मानवके उत्कर्ष की कुंजी है। अत. हृदय को माजो, बाहरी क्रियायोकी रेणु उसपर न जमने दो ! जीयो और जीने दो—सबको अपने समान समझो !'

'आजका मानव इस तथ्यको भुला बैठा है और शरीर की आसक्ति मे ऐसा मग्न है कि अपने स्वार्थके लिए दूसरो के प्राण लेते भी नही डरता !'—अलका ने बीच में कहा !

'किन्तु इस आसक्तिका भयंकर परिणाम भी तो आजके मानव को भुगतना पड़ रहा है-घर घर मे कलह है ग्राम-ग्राम मे स्पर्द्धा है, राष्ट्र-राष्ट्रमे अहकार है। चहु ओर अशान्ति हीअशान्ति है!'-विबुध ने उत्तर दिया !

'मानव दानव बन रहा है ; प्रेम और वात्सल्यका अकाल पड़ रहा है। जैनो को ही देखिये—सभी तो भ० ऋषभ के भक्त हं; फिर आपस मे बटे हुए होने के कारण शक्तिहीन हो रहे है।'—अलका ने बातका स्पष्टीकरण किया।

'ठीक कहती हो, अलका !' विबुध बोला, 'नाम—जैन तो आज बहुत मिलेगे, परन्तु सच्चे—सम्यग्दृष्टी जैनो का मिलना दुर्लभ है। सम्यग्दर्शनके बाह्यचिन्ह प्रशम, सवेग, अनुकम्पा आदि भी तो जैनो मे नही दिखते; फिर उसके अङ्गो की बात ही क्या?'

'भ०ऋषभ ने सम्यग्दर्शन के आठ अङ्ग कौन से बताये थे?'—अलकाने पूंछा। उत्तर में विबुध ने बताया—'सम्यग्दर्शन का पहला अङ्ग नि.शङ्क-वृत्ति है। जिसे आत्माकी श्रद्धा हो गई है—जो शरीर के नश्वर स्वरूपको जान गया है,उसे ससारका कोई भय नही सताता

वह नि.शङ्क हुआ एकाकी विचरता है। जिन वचन में उसकी अटूट श्रद्धा होती है। आजका मानव शङ्काशील हो गया है, इसीलिये भय से व्याकुल है। राष्ट्र-राष्ट्र एक दूसरे से भयभीत हैं, इसीकारण वही बडी फौजें रखते हैं और हाइड्रोजन बम्ब जैसे खर्चीले शस्त्र सिरजते है। वे भगवान्‌के सदुपदेशामृत का पान करें तो भयसे मुक्त हो जावें और जन हित साधना करके सबको सुखी बना सकते हैं।

'भइया, आप सच कहते हैं। भगवान् का उपदेश तीन काल के सभी प्राणियोके लिए हितकर है।'-अलकाने पुष्टीकरण किया। विबुध आगे कहता रहा—'इसमें कोई सशय नही; तीर्थंकरो का उपदेश धर्मविज्ञान है। जहा ऋषभदेव ने मानव को सब से पहले नि.शङ्क बननेका उपदेश दिया, वहा दूसरे अङ्ग में उसे नि.कांक्षी रहने का पाठ पढाया। दुनियामे झगडेकी जड़ 'ज़र-ज़मीन ज़न' कही गई है! 'जर' सोनेकी सम्पति भाई-भाई को लड़ा देती है, जमीनका भी यही हाल है और आज तो कामिनी और कचन ने मानवको पतन के चरम गर्त में पहुचा दिया है! स्त्रियो को आंखोमें से भी शील विदा होता जा रहा है। फैशनके भूतने उनकी इच्छाओको असीम बना दिया है। मानव शैतानकी गतिसे इच्छाओकी होड़मे सबसे आगे निकलने के लिए छटपटा रहा है और आये दिन दुखी बनता जा रहा है। आकुलतामें सुख है कहा? तीसरे अङ्गमें ऋषभदेवने ग्लानिको जीतने का पाठ पढाया- कोढी ही क्यो न हो, उसके रोगग्रस्त शरीर को देखकर घृणा मत करो, बल्कि उसकी सहायता करो! उसके भीतर भी परमात्मा बैठा हुआ है। वह करुणाका पात्र है। कदाचित वह साधु है तो वह हमारी वदनाका भी अधिकारी है! यही तो निर्वि-चिकत्सा-भाव है।'

'धन्य थे, भ० ऋषभ! जिन्हो ने गुणोको ही प्रकर्षता दी। शरीर चाहे काला हो या गोरा—नीरोग हो या कोढ से चुहचुहाता उसके भीतर जो आत्मा है उसको देखो। कदाचित् रोगी घबड़ाता हो तो उसे उसकी महानता का बोध करा कर स्थिर चित्त कर देना महान् उपकार है। यही भ० ऋषभका कहना था न, भइया?' अलका ने पूछा।

विबुध ने कहा—'तुम ठीक समझो हो, अलका, भ० ऋषभ ने मानव को अज्ञान से निकाल कर ज्ञान के उजाले मे बैठाया था। चौथे अङ्ग में उन्हो ने मानवकी मूढता का अन्त किया। मूढ बन कर बाहरी बातों मे धर्मको नही मानना—अमूढ़दृष्टि को पालेना है। धास मोचकर अंध अनुकरण उपादेय नही है। देव को तब पूजो जब उसको परीक्षा कर लो। रागद्वषको जीतकर जो मानव जीवन्मुक्त परमात्मा बने हैं, वे ही सच्चे देव है और कोई देव नही हैं। प्रत्येक मानव उनके पदचिन्ह पर चलकर स्वय परमात्मा हो सकता है। सच्चे गुरु को संगति में परमात्मा बनने को कलाको पहिचाना जा सकता है। जिनके पास एक धेला भी नही और जो कपड़े की एक धज्जी भी नही रखते तथा जिन्होने विषय-वासना को जीत लिया है, ऐसे दिगम्बर साधु सच्चे गुरू हैं। अहिसा प्रधान धर्म है— उसको पालने से मानवका कल्याण होता है। गगा-गोदावरीमे डुबकी लगानेने मात्र से धर्म नही होता- उससे शरीर का मैल भले ही छूटें, पापमैल के लिए तो मानव को व्रताचरण ही करना होता है।'

'यदि गंगा मे नहानेसे हो मुक्ति मिलती होती तो मच्छादि जो हर समय गगा-जल मे रहते है, कभी के मुक्त हो गये होते।' अलका ने कहा।

विबुध बोला-'सच तो यही है, किन्तु लोकमूढ़ता कुछ ऐसी फैल रही है कि कोई सच्ची बात सुनना भी पसद नही करता। इसीलिये भ० ऋषभने पहले ही सावधान कर दिया था कि मनुष्य विवेक से काम ले—अच्छी और बुरी बातको पहिचान कर जीवन मे आगे बढ़े। विवेकी मानव अपने गुणोको बढाता है और साथियोंको भी गुणवान बनाता है। इसप्रकार वह उपबृंहण अङ्ग को पालता है। पश्चात स्थितिकरण-अङ्ग को पालने में सावधान हो जाता है। अर्थात् स्वय धर्म पालने में स्थिर रहता है और अपने साथियो को भी धर्म में सुदृढ रखता है—उसे खोटी संगति और सभी आफतों से बचाता है। उसका यह उपकार भाव वात्सल्य अङ्ग में प्रगट होता है-वह सभी सार्धमि भाई बहनोसे प्रेम करता है औरसबको एकसूत्र में बधा रखता है। इस संगठितरूपमें वह मानवतामें सच्चे ज्ञानका

'सचमुच भइया ! तब तो सौन्दर्यका समा ही बंध गया होगा। 'सत्यं-शिवं-सुन्दर' साकाररूप में चमक जो रहा था। धन्य था वह समय और धन्य थे उस समयके मानव!'—अलकाने कृतज्ञताके स्वर मे कहा।

कैलाशकी रम्य उपत्ययका से निकलकर ऋषभदेव पूर्वकी ओर चले और फिर आर्यखण्डके सारे ही देशोमें उनका विहार हुआ'—विबुधने बताया। 'आदि भगवान् किधरसे कहां गये, यह बताना तो कठिन है, क्योकि यह बहुत पुरानी बात है। फिर भी श्री जिनसेनाचार्य ने अपने 'महापुराण' मे उन देशोके नाम जिनमे भगवान् का विहार हुआ था, निम्नप्रकार बताये हैं:—

'काशी अवन्तिकुरू कोसल सुह्मपुण्ड्रान्,
चेद्यङ्ग वङ्ग मगधान्ध्रकलिङ्ग मद्रान्।
पञ्चाल मालव दशार्ण विदर्भ देशान्,
सन्मार्ग देशन परो विजहार धीरः ॥२८७॥२४॥'

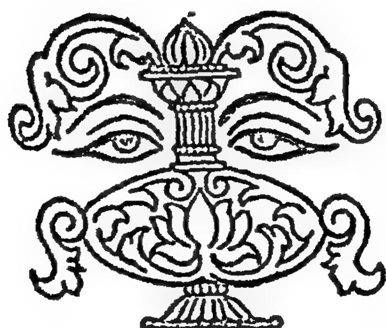
अर्थात्—'समीचीन मार्गके उपदेश देने में तत्पर तथा धीर-वीर भगवान्ने काशी, अवन्ति, कुरु, कोशल, सुह्म, पुण्ड्र, चेदि, वङ्ग, मगध, आंध्र, कलिङ्ग, मद्र, पञ्चाल, मालव, दशार्ण और विदर्भ आदि देशोमे विहार किया था।'

'फिर भी जैनाचार्यों ने पुरानी परम्पराओ को सुरक्षित रखकर हम लोगोका बड़ा उपकार किया है।'—अलकाने कहा। विबुध बोला 'जैन परम्परा मे 'पूर्व' नामक ग्रन्थ प्राचीन इतिहास और दार्शनिक उत्कर्षको व्यक्त करने के लिए रचे जाने का नियम था। इसीकारण जिनसेनाचार्य उन देशोको गिना रहे हैं जिनमे भगवान् का विहार हुआ था। इसके आधारसे एवं अन्य जनश्रुतियो के आधार से यदि हम अनुमान लगायें तो लगता है कि सबसे पहले भगवान का उपदेश नेपालमे हुआ जहां वे पशुपतिनाथके रूपमें आज भी पूजे जारहे हैं।'

'आदिनाथको पशुपतिनाथ क्यो कहा गया?'—अलकाने पूंछा।

विबुध ने उत्तर दिया कि 'चूंकि भ० ऋषभके समवशरण में सभी प्रकारके पशुओ को भी शरण मिली थी, इसलिए लोग उनको पशुपतिनाथ कहने लगे थे। उबसे वह हिमालयकी तराईमें विचरते

हुये श्रावस्ती और अयोध्या होते हुये काशी पहुँचे प्रतीत होते हैं। अयोध्यामें उनका समवशरण आया और धर्मदेशना हुई, इसे पूर्वपुरुषों से सभीने सुना है। प्राचीन स्तूपोके चिन्हावशेष, जिन्हें 'नशियाजी' कहते थे, हमने स्वय देखे थे। अब यहा पर आदिभगवान्‌की विशालकाय प्रतिमा स्थापितकी जारही है। ऐसे ही उड़ीसाकी जनश्रुति है कि आदिभगवान्‌ने कुमारी पर्वत से धर्मदेशना दी थी। साराश यह कि भारतके विविध प्रदेशोंमें आज भी ऐसे बहुत से स्थान हैं जिनके लिए कहा जाता है कि वहा पर भ० ऋषभदेवने पधार कर धर्मोपदेश दिया था। इसप्रकार देखा अलका, भ० ऋषभने सारे लोकको अपने उपदेशामृतसे तृप्त किया था। अब चलो, अलका, कल फिर बात करेंगे।' और दोनो ही भ० ऋषभदेव का स्मरण करते हुए स्वाध्याय कक्षसे बाहर हो गये।



में भी वैसी ही विशाल मूर्तियां बनानेका प्रयास हो रहा है। निस्सदेह भ० बाहुबली भी तो ऐसे ही महान्‌काय बलवान पुरुष थे; परन्तु उनका प्रभुत्व पशुबल में निहित न रहा, वह विरागी हुये और दिगम्बर मुनि बने। तपस्यामे ऐसे लीन हुये कि उन्हे अपने तनको सुध ही न रही। चींटियोने उनके पावके सहारे अपने बिल बना लिये और लताये उनके शरीर से लिपट कर प्रेम व्यक्त करने लगी, परन्तु बाहुबलि अपनी अन्तरनिधिको ढूंढने में ही समाधिलीन रहे।'

'बाहुबलिजी को ऐसा गहन ज्ञान और वैराग्य किस कारण से हुआ?'—अलका ने पूछा।

विबुधने उत्तर दिया-'इसका कारण उनके भाई भरत की अहं-वृत्ति का क्षणिक आवेश था!'

'वह कैसे?'-अलकाने आगे पूंछा तो विबुधने बताया'-बात यह हुई कि जब भरत को आयुधशाला मे चक्ररत्न उत्पन्न हो गया और वह भ० ऋषभ की बन्दना करके कैलाशपर्वत से लौटे तो उन के मत्रीने उन्हे जनता की अज्ञान और हीन दशासे अवगत किया। भ० ऋषभकी अहिंसा-सस्कृति और सभ्यता का परिज्ञान लोक को हो जाय, तो वह अपना कल्याण कर सके—यह मत्री ने कहा। भरतने सोचा और मत्रीके लोक कल्याणकारी सुझावको सराहा। सेनापति को उन्होने सेना सजानेकी आज्ञा दी, परतु स्वय वस्तुस्थिति का ध्यान करनेमें लीन हो गये। आजकल की तरह वह अपनी फौजका निरीक्षण करने नही गये वह तो उनके ऐश्वर्यका प्रतीक मात्र था। उन्हे विश्वासतो अपने आत्मबल पर था। उनकी दिग्विजयका ठीक अर्थ धर्म विजय था—वह मानवताका सगठन और विकास करने के लिए उत्सुक थे—उनके पूज्य पिताने मानवताको विकसित करने का प्रशस्त मार्ग ही तो निर्माण किया था। वह दिग्विजयको उद्यत हुये तो उनकी मा ने उन्हें आशीर्वाद देते हुये कहा—'जा बेटा, तू लोक का कल्याण कर। तेरी सेनाका प्यादा तो बहुत बडी चीज है, एक घोडे को भी कोई कष्ट न होगा, तेरा उद्देश्य पवित्र है।' माँ का आशीर्वाद सफल हुआ! भरतको रक्त का एक बूंद भी न गिराना पडा!'

'उनकी दिग्विजय अहिंसाकी दिग्विजय ही समझिये, क्योंकि उससमय लोकके मानवो को सभ्यता और संस्कृति का पहला पाठ जो पढना था। यही बात है न, दादा ?' अलकाने प्रश्न किया। विबुधने कहा 'तुम ठीक समझी हो, अलका! भरतकी दिग्विजय राज्यविस्तारके लिये नही, बल्कि वह अहिंसा के विस्तार के लिए थी। शास्त्रकारो ने लिखा है कि भरत उस रथ पर सवार होकर पूर्वदिशा को चले जिसमे दस घोडे जुते हुए थे-इसका आध्यात्मिक संकेत आत्माकी लोक विजयको प्रगट करता है, जो धर्मरूपी रथ पर आरूढ होने से सफल होती है। उस धर्म-रथके दस घोडे दस धर्मों के प्रतीक हैं। भरत म० लोक की विषमता को ही परास्त करना चाहते थे, मानो उनकी दिग्विजय इसीका संकेत कर रही है!'

'भरत पहले चक्रवर्ती सम्राट् हुए, परन्तु उनका चक्रिवर्तित्व तो शासनका अहंकार और मद व्यक्त नही करता। फिर वह कैसे चक्रवर्ती सम्राट् थे ?'-अलकाने शङ्का की। विबुधने मुस्कराते हुये कहा-'यही तो भरतके चक्रिवर्तित्वकी विशेषता है-वह सार्वभौम सम्राट् होते हुये भी एक विवेकी तत्वदृष्टा थे-पश्चिममें जिस आदर्श शासकको 'फिलॉसफर-किंग' (Philosopher King) कहा गया है, वैसे ही शासक वह थे। उनका महान ऐश्वर्य था-अपार भोगोपभोग की सामिग्री थी, परन्तु इतने पर भी भरत उसमें आसक्त न थे। उनकी मनोगति उस नर्तकी के समान थी जो सिर पर गागर रखकर ताल और स्वरकी साधनाका निर्वाह करके दर्शकों की प्रशंसा पात्र बनती है-वह नृत्य तो करती है परंतु प्रत्येक क्षण उसका ध्यान गागर को संतुलित रखने पर रहता है। ठीक यही हाल भरत म०का था। वह घर ही में वैरागी थे। भोग भोगते हुये भी वह उन में आसक्त

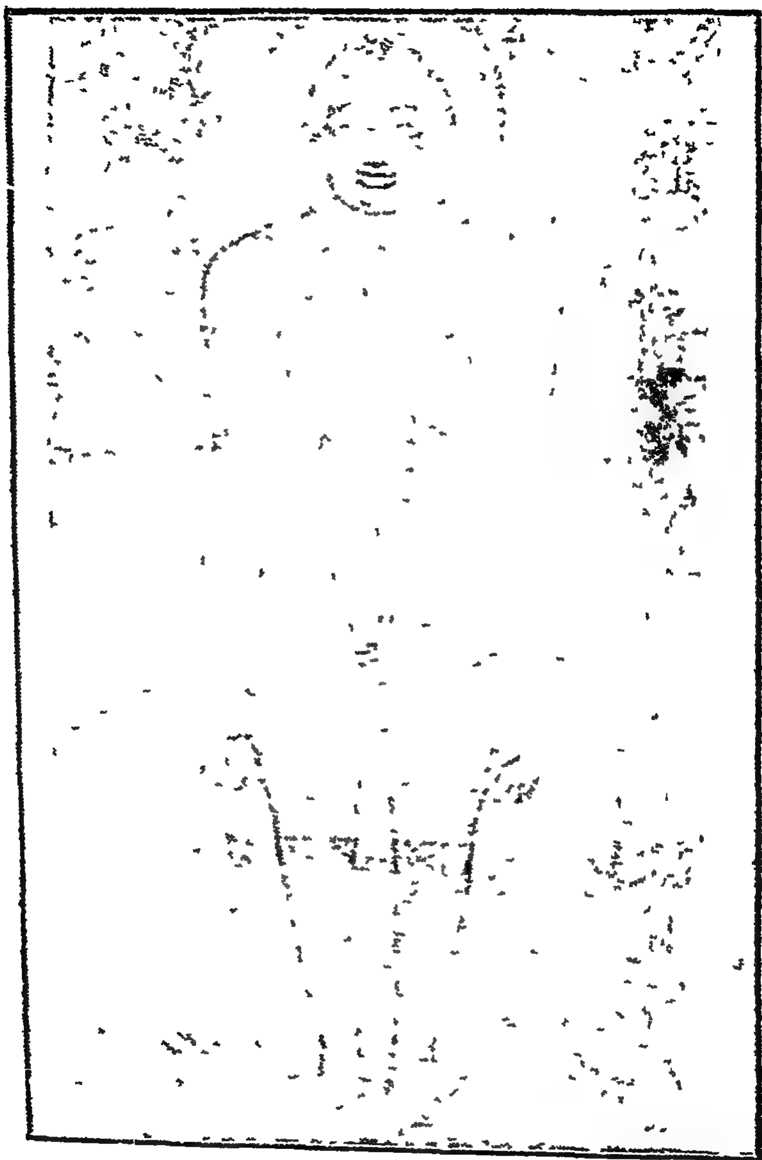
दर्शन करने आया। भरतके ऐश्वर्य और वैभवको देखकर वह दंग रह गया। वह समझ न सका कि भरतके परिग्रहकी जो सीमा नही है, फिर भी उनको लोग वैरागी कहते है—यह कैसे सभव है ? वह देव इस उलझन में था कि उसने देखा कि भरत इतने निस्पृह और निरभिमानी है कि उनसे हर कोई मिल सकता है। देव भी उनके पास पहुचा और अपनी उलझन उनको बताई। भरत मुस्करा दिये और बोले—'जाओ, पहले मेरा कटक देख आओ, परन्तु इस तेल भरे दीपकको इस सफेद कागज पर रखकर ले जाओ। ध्यान रखना इस में तेलका दाग न आने पावे।' देवने राजाकी आज्ञाको माना और वह कटक देखने को चला। चला तो पर उसका ध्यान दीपक पर ही हर समय लगा रहा। ज्यो त्यो करके वह सारे कटक को लाघ कर भरतके पास पहुचा, परन्तु तेलके छलक जानेके भय ने उसे कटक को देखन न दिया था। जब भरतने पूछा तो वह कटक की बात न बता सका। इसपर भरत म० ने कहा- 'देव, अब भी तुमको मेरे विरक्तभावमें शंका है ? मैं अपनी आत्मारूपी चादरमें कर्मरूपी तेलका धब्बा न लगने देनेकी चिन्तामें जागरूक हूं। यही कारण है कि इस पुण्य विभूति में ध्यानरत नही हूं।' देवने यह सुनकर माथा नमा दिया।'

'आजके सभी लोग सम्राट् भरतके आदर्श उदाहरणका अनुकरण करें तो मौजशौकके लिए जो छीनाझपटी मानवोमें हो रही है और पाप बढ रहा है, वह सब मिट जावे !'—अलकाने कहा।

विबुधने उत्तर दिया—'अलका, तुमने बात तो पते को कही है। परन्तु आजके शिक्षित और अशिक्षित-दोनो ही इससे विमुख हो रहे है। वे इसे जीवनसे भयभीत होकर पलायनता (Escapism) की शरण लेना बताते है, किन्तु बात ऐसी नही है। भरत म० का उदाहरण स्पष्ट है और अनेक जैन उनका अनुकरण करते है। इन्दौर में हमें एक ऐसे जैनका पता चला जो नियत निधिके पान बेचकर नियमित पैसे कमा लेनेमें ही मगन था—वह दिनभर पानकी दुकान लगाये नहीं बैठा रहता था—ज्यो ही उनकी प्रतिज्ञाके अनुसार आमदनी के पैसे आये कि उसने दुकान बंदकी और शेष समय आनन्द प्रमोद



भ० ऋषभदेव के पुत्र श्री बाहुबलि की दिव्य-मूर्ति, श्रवणबेलगोल



भ० ऋषभदेव के पुत्र श्री भरत
(मुनि अवस्था मे)

या चरचा वार्तामे विताई। वह संतोषी और सुखी था—जीवन की मस्तीका आनन्द लूटता था, क्योकि वह भोग में आसक्त न था। जैनधर्म यह नही कहता कि तुम दुनियादार लोग हो—त्याग और संयम भाव तुम्हारे मन नही चढ़ा है—तो तुम दुनिया को छोड़ दो और भोगसे मुंह मोड़ लो। नही, जैनधर्म दुनिया के लोगो से यह नही कहता। वह कहता है:—

'न सुखानुभवात्पाप पाप तद्धेतुघातकरम्भात्।
नाजीर्ण मिष्टान्नान्नतु तन्मात्रायति क्रमणात्॥'

ससारके सुखोको भोगने में पाप नही हैं, किन्तु पाप उस वृत्ति में, उस आसक्तिमे है—जिससे कि भोग के हेतु (source) का ही नाश होता है! मिष्टान्न के खाने से अजीर्ण नही होता, बल्कि मिष्टान्नको अत्यधिक खा जाने से अजीर्ण होता है!'

'इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक प्राणी अपनी इच्छाओ को संयत रक्खे, वरन् इच्छाओ की तो कोई सीमा ही नही है। आज सभी लोगो ने अपनी इच्छाओ को वेलगाम छोड दिया है जिसके कारण इच्छाये तो असीम हो गई है और भोग सामग्री सीमित मात्रा में ही उपलब्ध हो रही है। इसका दुष्परिणाम स्पष्ट है—संघर्ष और असंतोष मानवको खाये जा रहा है!'—अलका ने बातका स्पष्टी-करण किया।

विवुधने अलकाकी दीर्घदृष्टिको मन ही मन सराहा। फिर वह आगे बोला-'भरत का आदर्श एक साम्राज्यवादी लोलुपी लुटेरे जैसा नही था-वह था एकसन्त हृदयका आदर्श,जो सारे लोकको सुखी देखना चाहता था। भरतने अपने पिता ऋषभके आदर्श 'वसुधैवकुटुम्बक' का ही पाठ पढ़ा था। यही कारण है कि जब वह अयोध्यासे चलकर पूर्वकी ओर उपसमुद्ररूप 'गंगासागर' के तट पर पहुंचते है, जिसके पार मगधदेश चमक रहा था,* तब उस सागर का सौन्दर्य उनके हृदयमे आत्माल्हाद जगा देता है। भरत कहते हैं— जबसे मैंने यह

---

*'महापुराण' मे भरत दिग्विजय का जो वर्णन है उससे ध्वनित होता है कि उत्तरापथ प्रदेश और मगधके बीचमे तब एक समुद्र लहराता था। यही हाल राजस्थान का था— वहा भी तब समुद्र था।

समुद्र देखा है तबसे मेरे हृदयमे यह आल्हाद हिलोर रहा है कि मैं यहा निरन्तन्र ध्यान करता रहूँ। सागर और नदियो के तट तथा गहन वन और ऊ चे पर्वत ही तो वे सुरम्य स्थान है जहा ध्यानकी साधना की जाती है ! ध्यान से ही तो मुझे वह बल मिलेगा जिस से सारे संसार को मैं अपना मित्र बना लूंगा।' कितनी विशाल और महान भावना थी यह, अलका?'

'निस्सदेह यह भावना ही तो लोकनिस्तारणी है ! आज का साम्रजायवादी होता तो वह समुद्रको देखकर उस की गहराई और विस्तार को नापने मे ही लग जाता—उसे अपने आप पर विश्वास कहा है ? वह शस्त्रास्त्रो के बल पर विषमता सिरज रहा है । आकाश-पाताल जैसा अन्तर है आजके शासकमे और सम्राट् भरत मे।' अलका ने कहा।

विबुध बोला—'मानव वृत्तिके इस अन्तरने ही लोक व्यवहार मे अन्तर ला दिया है। आजका मानव वाह्य ऐश्वर्यमें लुब्ध होनेके कारण आकुल-व्याकुल हुआ छटपटा रहा है और भ० ऋषभ के तीर्थ का मानव संतोषी और सुखी था। भरत के समान महान ऐश्वर्यशाली सम्राट् भी वासनामें आसक्त नही हुआ-उन्हे पैशाचिकी महत्वाकाक्षा छू भी न गई जो वह कभी नर संहार करते। उन्होने दिग्विजय की मात्र प्रेम, मैत्री और करुणा के अस्त्रो के द्वारा। जब मागधदेव को जीतनेका प्रश्न उपस्थित हुआ तो भरत कहते हैं, 'चिन्ता नही। अरे वह कही कोई वैरी तो है नही और हमें वैर बिसाना नही है। वैरसे वैर मिटता नही, अग्निसे अग्नि बुझती नही ! लो मै ध्यानकी एकाग्रता के द्वारा वह समता भाव बहाऊ गा कि मागधदेव स्वत: ही मेरे पास भगा चला आवेगा !' और यही भरत ने कर दिखाया ! उन की सारी दिग्विजय इसी अहिंसक शक्ति के द्वारा संचालित की गई थी। फलत सारे ससार में उनकी दिग्विजयसे अहिंसा की विजय-वैजयन्ती फहरा गई थी !'

'किन्तु भइया, एकबात बताओ कि जब भरत मैत्री और करुणा के आदर्श थे तो उन्होने अपने भाई बाहुबलि से क्यो युद्ध किया ?' अलका ने पूछा।

पर अपना नाम चक्रवर्तियो की नामावली मे जोड़ने के लिये उद्यत हुआ तो जो वहा देखा उससे मेरी आखे खुल गई। मेरे से पहले इतने अधिक चक्रवर्ती राजा हो गए थे कि पर्वतशिला पर नाम लिखने के लिए स्थान ही शेष न था। मैने एकका नाम मिटाया तब अपना नाम लिखा। लिखा तो, परन्तु तबसे मेरा हृदय एक टीस से चुभ रहा है। आगे कोई चक्रवर्ती होगा तो यह मेरा नाम मिटा देगा—

ऋतः मै अपने मानस से महत्वांकाक्षा की—मानकी रेखा ही को क्यो के भेटा दू ? उसके आधार शरीर—सबधको ही क्यो न विच्छेद कर प्रश्न भू रहेगा बास न बजेगी बांसरी ! फिर आप तो महान भाई वह गर्तरिक विजयमे बहुत आगे बढ गये है ! भइया ! सच वह भी अहिंसकी न भरत की है और न किसी की हो सकती है ! और बाहुबलिका! र मे पड़ना व्यर्थ है—वह केले के स्थभ की तरह नेत्र युद्ध, मल्लयुद्ध, जल मे आपके चरणोका चचरीक हूँ। मुझे आशी-भुजवली थे ! उनके सामने आत्मकल्याण कर सकूं।' भरत कहते—के लिये ऐसे क्रोधावेश मे आये ? बाहुबली का वरद हस्त उनके मस्तक प्रहार कर बैठे ! किन्तु चक्र तो उसुना बाहुबली के मुखारविन्द से वह हिंसा कैसे करता ? भरत को यह दस्तु।' पानी पानी हो गये। दोनों भाइयों ने इस घट था वह ! उसकी स्मृति का पाठ सीखा। बाहुबलीने कहा— धिक्कार 'ऐं—अलकाने बात के के कारण भाई-भाई का वैरी बनता है ! ससार के नाते-रिश्ते तो स्वार्थ पर टिके हुये है! मुझे इनमे लाभ क्या? मै राग और द्वेष-भूख और प्यास, सबको जीतूंगा।' बाहुबली ने पुत्रको राज्य दिया और भ० ऋषभ के निकट जाकर मुनि हो गये ! देखा अलका, यह था बाहुबली के वैराग्य का कारण !

'धन्य थे वह कि राज्य-पाट सभी कुछ छोड़कर बनवासी हुए।' अलका ने कहा।

'वनवासी तो हुये और तपश्चरण भी करने लगे' 'विबुधने बताया, 'परतु उनके हृदयको मानकी जरासी फांस घाले डाल रही थी। बाहुबली के मनमे रह रहकर यह बिकल्प उठता था कि वह सम्राट् भरत कीभूमि पर खड़े है। और यह जरा—सा विकल्प उन

समुद्र देखा है तबसे मेरे हृदयमें यह आल्हाद हिलोर रहा है कि मैं यहा निरन्तनर ध्यान करता रहूँ। सागर और नदियो के तट तथा गहन वन और ऊंचे पर्वत हो तो वे सुरम्य स्थान हैं जहा ध्यानकी साधना की जाती है। ध्यान से ही तो मुझे वह बल मिलेगा जिस से सारे संसार को मैं अपना मित्र बना लूंगा।' कितनी विशाल और महान भावना थी यह, अलका?'

'निस्सदेह यह भावना ही तो लोकनिस्तारणी है। आज का लते साम्राज्यवादी होता तो वह समुद्रको देखकर उस की गहराई औ दृष्टि विस्तार को नापने मे ही लग जाता—उसे अपने आप पर वि बाहुबली कहा है? वह शस्त्रास्त्रो के बल पर विपमता सिरज रहे म—मोहरूपी आकाश-पाताल जैसा अन्तर है आजके शासकमे और । दूर हो गई।' में।' अलका ने कहा।

विबुध बोला—'मानव वृत्तिके इस अन्तरने भरत महाराज और अन्तर ला दिया है। आजका मानव वाह्य ऐश भ० ऋषभदेव की दिव्यध्वनि आकुल-व्याकुल हुआ छटपटा रहा है औ। क्यो अभीतक सफल नही हुई मानव संतोषी और सुखी था। भरत और पोदनपुरके उद्यानमें पहुचे जहां सम्राट् भी वासनामें आसक्त नही। ब्राह्मी और सुन्दरी बोली—'वीरा, छू भी न गई जो वह कभी बाहुबली के कान में ये शब्द पडे तो वह मात्र प्रेम, मैत्री और क लगे—'मुझने और हाथी—घोड़ोसे अब क्या जीतनेका प्रश्न उप सबका त्याग कर चुका। वेचारे निरीह पशुओं के स्वतन्त्र विचरण में क्यो बाधक बनता? स्वाधीनता तो सबको प्रिय है। मै गज पर कहा सवार हूँ? फिर ब्राह्मी—सुन्दरीने यह क्यो कहा?' वह सोचने लगे और सोचते सोचते समझे—गज केवल पशु ही नही होता? विद्वानो ने मान को भी गज की उपमा दी है। वह मान मतगज पर अवश्य ही आरूढ हैं। धन्य है, ये बहनें जिन्होने उनको सम्बोधा! झट मे बाहुबली ने आंखें खोल दी और देखा कि भरत महाराजा उनके चरण—कमलो में पड़े हुये कह रहे थे—'भाई! यह पृथ्वी न किसी की हुई और न किसी की होगी। यह तो पुरुष के मोह की विडम्बना और लोभकषायकी आतुरता है जो वह पर वस्तु को अपनी कहता है। जब मैं दिग्विजय कर चुका और पर्वत शिला

पर अपना नाम चक्रवर्तियो की नामावली मे जोडने के लिये उद्यत हुआ तो जो वहा देखा उससे मेरी आखे खुल गई । मेरे से पहले इतने अधिक चक्रवर्ती राजा हो गए थे कि पर्वतशिला पर नाम लिखने के लिए स्थान ही शेष न था । मैंने एकका नाम मिटाया तब अपना नाम लिखा । लिखा तो, परन्तु तबसे मेरा हृदय एक टीस से चुभ रहा है । आगे कोई चक्रवर्ती होगा तो यह मेरा नाम मिटा देगा—अतः मै अपने मानस से महत्वाकाक्षा की—मानकी रेखा ही को क्यों न मिटा दू ? उसके आधार शरीर—सबधको ही क्यो न विच्छेद कर दू ? न रहेगा बास न बजेगी बांसरी ! फिर आप तो महान हे-आप आन्तरिक विजयमे बहुत आगे बढ गये है । भइया ! सच जानो, यह पृथ्वी न भरत की है और न किसी की हो सकती है ! अत. झूठे विकल्प मे पडना व्यर्थ है—वह केले के स्थभ की तरह निस्सार है । भइया ! मे आपके चरणोंका चचरीक हूँ । मुझे आशीर्वाद दें कि मै भी अपना आत्मकल्याण कर सकूं ।' भरत कहते—कहते गद गद हो गये और भ० बाहुबली का वरद हस्त उनके मस्तक पर अनायास छा गया । भरत ने सुना बाहुबली के मुखारविन्द से निकला हुआ कल्यणमय शब्द 'ऐवमस्तु !'

'अहा, कितना पुण्योपम दिव्य अवसर था वह ! उसकी स्मृति मात्र ही हमारे हृदयो को पवित्र कर देती है ।'—अलकाने बात के महत्व को व्यक्त किया ।

विबुध सुनते ही रोमांचित होगया । आत्माल्हादका रस-निर्झरवहां उमड़ पडा । उस अमृतका आनन्द लेकर वह बोला-'अलका,बाहुबली के हृदयसे मानकी शल्य जैसे ही दूर हुई वैसे ही उन्हे केवल ज्ञानी होते देर न लगी! जनतामें धर्मामृतवर्षा करके वह मुक्तात्मा बनगये! सारा ससार उन सिद्ध परमेष्टीको आजभी मस्तक नमाता है और भरत? वह तो घर ही मे वैरागी थे ।कपड़े उतारते उतारतें ही उन्हें केवल ज्ञान लक्ष्मी मिली थी ! वे दोनो भाई सिद्धलोकमें परमानन्दका उपभोग कर रहे है और लोकको सत्यका सदेश दे रहे है !'

'ऐसे भाई और बहनें घर-घर हो ।'-अलकाने कहा और दोनो स्वाध्याय कक्षके बाहर चले गये ।

आदर्श-शासक और नीतिकार भरत

"एवमेकातपत्रायां पृथिव्यां भरतोऽधिपः।
आखण्डल इव स्वर्गे भुङ्क्ते कर्मफलं शुभम् ॥"

—श्री रविषेणाचार्य

भरत और बाहुबली—दोनो भाइयोकी आदर्श नीति और महान् त्याग लोकके लिये कितना बोधप्रद है'—इसीके सोचविचार में विवुध और अलका रहे। दूसरे दिन वे जव फिर स्वाध्याय-कक्ष में पहुचे तो भरत और वाहुवलीके चरित्र ही उनके ज्ञान-नेत्रोके समक्ष चित्रपट की तरह झूल रहे थे। वाहुवली तो कृतकृत्य हो चुके थे, इसीलिये बात भरत महाराज पर चली। अलका ने पूछा—'दिग्विजय के उपरान्त भरत चक्रवर्ती ने जनहितका ऐसा कौनसा कार्य किया, जिससे आज भी उनका नाम एक आदर्श शासक और महान् योगीके रूपमें लिया जाता है। यहा तक कि उनके नाम पर ही यह देश 'भारतवर्ष' अथवा भरत क्षेत्र कहलाता है।'

विवुध यह प्रश्न सुनकर मुस्कराता हुआ बोला—'निस्संदेह अलका भरतकी महानता उनके गुणों और जनहित-कार्योमें ही छुपी हुई है। जर्मन कलाकार शिलर (Schiller) ने आजकलके शासक के लिए कहा था कि वह अपनी स्थितिका गुलाम है- अपने अन्तरके कहने पर चलने की भी हिम्मत नहीं रखता। भरतकी स्थिति ठीक इसके विपरीत थी। वह नीतिको राजा मानते थे और नीति ही उनके निकट दढविधान था। म० गांधीने एक दफा कहा था कि 'सारी मानव

जातिके साथ आत्मीयता कायम किये विना मेरी धर्मभावना सन्तुष्ट नही हो सकती और यह तभी संभव है जबकि मै राजनैतिक मामलों मे भाग लूं।' म० गांधीने भरतके-आदर्शको ही मूर्तमान किया था। भरतने छै खंड पृथ्वी की दिग्विजय मात्र इसीलिए की थी कि दुनियां के लोग परस्पर प्रेम और भ्रातृभावसे रहना सीख जावें और सीख जावें आत्मा की स्वाधीन वृत्ति को !

'किन्तु भरतमे मुझे एक बात विलक्षण दिखती है-उन्होने मानवो तक ही अपने उदारभावको सीमित नही रक्खा था, बल्कि पशुओ, वृक्षो और हरी भरी घास तककी रक्षा करना उन्होने अपना कर्तव्य माना था।'- अलकाने स्पष्टीकरण किया।

विवुधने कहा-'यह तो भरतकी विशेषता थी ही। वह तीर्थङ्कर ऋषभके पुत्र जो थे। ऋषभने कहा था-'जे कम्मे सूरा, ते धम्मे सूरा!' अर्थात् जो कर्मशूर होते है, वे ही धर्मशूर बनते है। अलबत्ता यह जरूर है कि कर्मशूर बनने से ससारमे प्रगति होती है। कर्मशूरता तो श्यामा गाय है जो सफेद दूध देती है, परन्तु धर्मशूरता उस गायके समान है, जो देखने मे भी सफेद है और दूध भी सफेद देती है। राजनीतिमे कलुषता है, परन्तु नीतिजलसे वह कलुषता ऐसी धुलती है कि जनहितमें दूध जैसी सफेद होकर चमकती है। भरतके लाखो गायें थी-उन्होने मानो उनके रूपको देखकर ही अन्तर और बाहर दोनो वृत्तियोको एक समान शुक्ल और स्वस्थ रखना सीखा था। वह एक धर्मनिष्ठ और न्याय परायण राजा थे। न्यायके समक्ष वे किसी का लिहाज नही करते थे, चाहे उनका सगा बेटा ही क्यो न हो? उनका दण्डविधान अहिसा पर आधारित था—आतङ्क जमाने के लिये नही, बल्कि अपराधीके हृदयमें अपराधके प्रति घृणा और भय जगा देना उनका ध्येय था।'

'निस्सदेह लोकका हित इसीमे है कि जनता पापकर्मसे भयभीत हो धर्मकार्य करने में निरत रहे?'—अलकाने कहा।

'भरत म० की विशेषता यही तो थी!'-विवुधने अलकाकी बात को पुष्ट करते हुए कहा-वह बोला-'इसीकारण वह जनताको अत्यन्त प्रिय थे। एक बार ऐसा हुआ, अलका कि स्वय उनके पुत्र अर्ककीर्ति

ने अनीतिमें पग बढाया तो उन्होने उसको भर्त्सना करके दण्डित किया !
'अच्छा' अपने ही बेटेको; ऐसी क्या बात हुई थी?'—अलकाने पूछा।

'बात यह हुई थी, अलका'-विबुध ने बताया कि 'वाराणसी के ज्ञातृवंशीय नरेश अकम्पन ने अपनी सुन्दर राजकुमारी सुलोचना का स्वयम्वर रचा था। उसमें युवराज अर्क कीर्ति भी गये थे; किन्तु सुलोचना ने वरमाला हस्तिनापुर के नरेश सोमप्रभ के पुत्र राजकुमार जयवर्मा के गले मे डाली। अर्क कीर्ति को यह रुचा नहीं और वह युद्ध करने पर उतारू हो गया। सभी लोगो ने समझाया परन्तु अर्क कीर्ति को चक्रवर्ती पुत्र होने का अहकार था। ज्यो त्यों समझाकर अकम्पनने उसको शान्त किया और अपनी कन्या राजकुमारी अक्षमाला उसको विवाह दी। भरत ने जब यह सुना तो उन्हो ने अर्ककीर्ति के युद्ध कार्यकी निन्दा की और उसे लज्जित किया। देखा यह थी भरत महाराज की न्याय परायणता !'

'सचमुच वह एक निष्पक्ष शासक थे—शासन वही आदर्श होता है जिस में छोटे, बड़े, सब के साथ समानता का व्यवहार किया जावें।'—अलकाने यह कहकर विबुधकी बातको बड़ा किया।

विबुध ने आगे कहा— 'समानता सहृदयता और सत्यता पर आधारित शासन ही लोक के लिये आदर्श होता है, क्योकि वह सीधा मानव के हृदय को मोह लेता है' भरत नीतिधर्म के प्रतिरूप थे। उन्होने मातृत्वको सर्वोपरि सम्मान दिया। जगतजननी स्त्रियां ही तो है। कदाचित् पुरुषोका सर्वथा अभाव हो जावे तो भी स्त्रियां संसार का व्यवहार चला ही ले जावेंगी—उनमे से अनेकों अपनी कोखसे पुरुष-शिशुओं को जन्म देंगी। और फिर बालक की पहली शिक्षक स्त्रियां ही तो होती हैं। यदि मातायें आदर्श और गुणवान होती हैं तो उनकी सन्तान भी वैसी ही होती हैं। आदि भगवान् ऋषभने इसीलिए सबसे पहले अपनी पुत्रियो, ब्राह्मी और सुन्दरी को शिक्षित और दीक्षित किया था। शिक्षित होने का वास्तविक अर्थ यही है कि व्यक्ति अपने स्वरूप को और परके सम्बन्ध को पहिचान ले—उसके भीतर विवेक जागृत हो जावे। वह अच्छे और बुरे कार्यों को पहिचान कर मानवता का हित साधे !'

'किन्तु आजकल तो पढ़ी लिखी स्त्री पुरुष की बराबरी करना ही अपना अधिकार समझती है'—अलका ने बीच में टोका।

'आजकी तो बात ही दूसरी है।' विबुधने बातको साधते हुए कहा 'यह भौतिक वादका युग है। लोग वस्तुस्थिति (Realities) की ओर से बेख़बर हैं। ऋषभदेव ने स्त्री-पुरुष ही नहीं, बल्कि जीव मात्रकी आत्मा को एक समान घोषित करके उन्हें परमात्म—पद पाने का अधिकारी घोषित किया था, क्योंकि सभी आत्मायें अपने आध्यात्मिक रूप में एक समान ही दर्शन—ज्ञान आदि गुणों के आगार रूप ब्रह्म ही हैं। फिर उनमे मौलिक अन्तर कैसे हो? अलबत्ता व्यवहारमे जीवने अपनी ही भ्रान्तिसे अपनेको क्षुद्रस्थितिमें—ससारके ससृति-प्रवाह में पटक लिया है। इसी कारण उसे जन्मगत परिस्थितियोंमे नाना प्रकारके परिवर्तन करने पड़ते हैं। क्षण-क्षणमें उसके विचार बदलते हैं जिनका प्रभाव उसके शरीर और मन पर पड़ता है। अच्छे और बुरे बिचारों का प्रभाव भी अच्छा या बुरा होता है-उसी प्रकार सुख और दुखके प्रसंग उपस्थित होते हैं। वैर करोगे तो वैर मिलेगा। आग बरसाओगे तो आग ही फैलेगी। कषायसे कषाय ही जन्मेगा। इसके विपरीत दया करोगे, दया पाओगे! प्रेम करोगे तो दुनिया भी तुमसे प्रेम करेगी। चाहे साम्यवाद हो और चाहे पूंजीवाद इस कारण-कार्य सिद्धांतके प्रभावसे अछूता कोई नहीं बचता वस्तुस्थितिकी ओरसे आंखें मीचकर शुतरमुर्ग बनने से यथार्थता (Reality) बदल न जावेगी!'

'यह तो आप ठीक कहते हैं: ज्वालामुखी पर्वत आग ही बरसायेगा और हिमवान् का मानसरोवर शीतल सलिल ही देगा!'—अलका ने कहा!

'किंतु आजका मानव इस सत्यकी ओर से विमुख हो रहा है! उसके दुखका कारण उसका यह अज्ञान ही है।' विबुधने स्पष्ट किया और आगे कहा-'परन्तु भरत म० ने उस समयके मानवों को सम्यक् दृष्टि प्रदान की थी। पुरुषोंसे अधिक स्त्रियोंका सम्मान किया था पुरुष पुरुषोचित क्षेत्र में सर्वाधिकारी था और स्त्रियां स्त्रियोचित क्षेत्र में पूर्णाधिकारी थीं। प्रकृतिने दोनोंकी आकृति, स्वभाव और शक्तिमें

जो अन्तर उपस्थित किया है, वह कोई मिटा नही सकता है। गृह-व्यवस्था, कुलपरम्परा और समाज निर्माणमें यद्यपि पुरुष और स्त्रियां समान रूपमे उपयोगी हं परन्तु अपने-अपने क्षेत्रोमें दोनोकी अपनी अपनी प्रधानता है। भरत म० ने उत्तराधिकारका यह नियम बनाया था कि बेटा के होते हुए भी पति का उत्तराधिकारी उसकी पत्नी होगी। यह नियम शायद ही कही अन्यत्र मिले, इसका परिणाम भी बहुत ही अच्छा हुआ था। जैन पुराणो को पढिये उन मे राजपुत्र अथवा सेठो के लडके अपने पौरुष के द्वारा जीवनमें चमकने के लिये उद्योगशील मिलते हैं। कोई भी बालक आलसी बनकर पिता की सम्पति पर गुलछर्रें उड़ाता नही मिलता और महिलायें अपने पति के कुल की परम्परा और प्रतिष्ठा बनाये रखने के साथ ही बड़े-बड़े धर्म-कर्म करती हुई मिलती हं। कलामय सुन्दर नयनाभिराम मन्दिरो, बड़ी २ ज्ञानशालाओ और धवला जैसे अपूर्व ग्रन्थो को महिलाओ ने अपनी दानशीलतासे निर्माण कराया था। ऐसी विदुषी और धर्मात्मा माताओके संरक्षणमें उनके पुत्रोने ठीकसे पुरुषार्थ और श्रम किया तथा सुखद मर्यादा-धर्मका निर्वाह किया। और वे जीवन मे आदर्श-पदको पाकर सफल हुए !'

'कर्तव्यशील पुरुषार्थी युवक जो अपने स्वार्थ को सबके स्वार्थमें अन्तर्निहत कर देते हं, जोवनमें सफल होते ही है।'—अलकाने बात को दुहराया। विबुध यह सुनकर प्रसन्न हुआ और आगे बोला-'भरत म० ने एक समय यह देखा कि प्रजाके लोग शौर्य, अर्थसञ्चय और शिल्पोत्पादनमें तो उन्नति कर रहे हं, परन्तु उनमें ज्ञानका विकास नही हो रहा है। भरतने सोचा कि भ० ऋषभने क्षत्रिय वर्गको शौर्य एव राष्ट्रसंरक्षणके लिए, वैश्योको राष्ट्रकी श्री वृद्धिके लिये और शूद्रवर्गको श्रम और शिल्पके लिए ठीक ही नियोजित किया, परन्तु वह ज्ञानोत्कर्षकी बातको कैसे भूल गये ? उसके लिए भी तो राष्ट्र में कोई संस्था होना चाहिए ? किन्तु भरत यह न समझ पाये कि ज्ञानका मार्ग निवृत्तिकी ओर ले जाने वाला है। अत जो साधु पुरुष निवृत्ति-पथके पर्यटक बने हो वे ही ज्ञान-प्रकाश फैलानेके अधिकारी हैं ऋषभने श्रमणसंघ की स्थापना इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए ही

की थी। किन्तु भरत म० की दृष्टि प्रवृत्ति-परक थी। उन्हें लगा कि प्रजा को सत्यरूपेण शिक्षित-दीक्षित करने के लिये अहिंसा व्रत को पालनेवाले सदाचारी मानवोको नियुक्त करना चाहिये, जो स्वयं आदर्श जीवन विताते हों और लोगो को अहिंसक जीवन के योग्य समुचित ज्ञान दान कर सकें। साथ ही भरत म० ने यह भी आवश्यक माना कि ऐसे ज्ञानी और सदाचारी मानवोको आजीविकोपार्जनकी फिक्र से मुक्त कर देना चाहिये।'

'भरतने राष्ट्रहित के लिए एक बड़ी ही अच्छी बात सोची। मानव सम्यक्ज्ञान के विना अंधेरे मे भटकता रहता है।'-अलका ने यह ठीक ही कहा।

विवुध ने भरत म० के राष्ट्र प्रेम की खूब ही सराहना की और बोला-'वे लोग जो अपने स्वार्थ मे अंधे होते हैं राष्ट्रहित की परवाह नही करते और मानवताके लिए कलङ्क बनते हैं। किन्तु सम्राट् भरत अपनी प्रजा को आदर्श रूप मे देखना चाहते थे। अतः उन्होने प्रजाकी परीक्षा लेने की बात सोची और परीक्षोत्तीर्णों को पुरस्कार देनेकी घोषणा कर दी। परीक्षाका मापदड माना अहिंसाको। उन्होंने कहा-'देखें, कौन कितना जागरूक रहकर अहिंसा व्रत पालता है। विवेकज्ञानकी तरतमता बतानेकी यही कसौटी होगी।' इसके लिए उन्होने अपने राजभवन तक आने के मार्ग पर काफी घास और फूलोके पौधे लगवा दिये तथा बगलमें एक प्रासुक पगडडी भी बनवा दी। जो लोग भोगमे आसक्त हो रहे थे, वह घासको रौंदते और फूलोको तोड़ते हुये आये, उन्हे चक्रवर्ती की मीठी चुटकी ही मिली। उन्होने कहा-'अरे, तुमतो घाससे भी गये-बीते हो गये! घास सब कुछ सहन करके ही पनपती और बढ़ती है, प्रतिशोध अथवा दूसरो को कष्ट देने की भावना उसके भीतर नहीं है। और तुम मानव होकर उसे रौंधते आये।' ऐसे लोग परीक्षा में असफल रहे। उनके पश्चात् वे लोग आये जो भोगोमें आसक्त नही थे और व्रतोको पालते थे। सब प्रासुक पगडडीसे मार्ग शोधते हुए आये। मार्गमें जब लोग फूल तोड़ते तो वह कहते 'मा हन' (मत मारो) भरतने उनकी उदार वृत्तिको देखा और उन्हें परीक्षामें उत्तीर्ण घोषित किया। उन

को खूब पुरस्कार दिया और यजन-याजन एवं अध्यापन करना उनका कर्म घोषित कर दिया। साथ ही उन्हें दान लेने का अधिकार भी प्रदान किया। चूंकि वे लोगोंसे 'मा हन' (मत मारो) कहते थे, इस लिये वे 'माहन' नामसे प्रसिद्ध हो गये। कालान्तरमें वे अपने ज्ञान के कारण 'ब्राह्मण' कहलाने लगे। अच्छे कर्म और व्रतोंके कारण उनका सम्मान होने लगा। देखा अलका ! भरत म० कैसे एक आदर्श एवं नीतिनिपुण शासक थे !

अलका ने विबुध की बातको सराहा और कहा—'किन्तु आगे चलकर ये लोग अहिंसाधर्म के प्रतिकूल हो यज्ञों में पशु बलि चढ़ाने लगे थे।' 'हाँ, यह तो हुआ ही, स्वयं भ० ऋषभ ने यह बात सम्राट् भरतको बता दी थी। इसी कारण ब्राह्मणों और श्रमणोंकी परम्परा में अन्तर पड़ गया।' यह कहते हुये अलका और विबुध—दोनों ही स्वाध्याय कक्षसे बाहर चले गये !



भरत की कैलाश यात्रा और भ० ऋषभ की भविष्यवाणी।

'अथ चक्रधरः काले व्यतिक्रान्ते कियत्यपि;
स्वप्नान्नयशायत् काश्चिद् एकदाऽद्भुत दर्शनात्।

\+ + + +

अपि चास्मदुपज्ञं यद् द्विजलोकस्य सर्जनम्,
गत्वा तदपि विज्ञाप्यं भगवत्पादसन्निधौ ॥'

—श्री जिनसेनाचार्य।

स्वाध्याय कक्ष मे पुनः प्रदेश करते ही अलकाने विबुध से भरत भ० के गुणोंको सराहना करना प्रारम्भ किया। वह बोली' निस्सदेह भरत सुयोग्य पिता के सुयोग्य पुत्र थे। पिताने मानवताको सिरजा-सभ्यता और संस्कृति की जड़ जमाई, तो पुत्रने मानवताकी जड़को दृढ़ किया और अहिसा संस्कृति को सारे ससार मे फैला दिया!'

अलकाकी बात में तथ्य था। विबुध उसकी बुद्धिमत्ता पर मन ही मन प्रसन्न हो रहा था। उसने कहा—'अलका, ठीक कहती हो। भरत म० चाहते थे कि जनता विद्या, कला, ज्ञान, विज्ञान, धर्म सस्कृति, समाज-विज्ञान आदि विषयो का प्रशस्त ज्ञान प्राप्त कर के जीव मात्र के साथ समता और समानता का व्यहार करे। सब एक दूसरे से प्रेम करे और एक दूसरे के साथ सहयोग से वरतें। इसके लिये भरत म० स्वय नमूना बने थे!'

'यथा राजा तथा प्रजा'—यह पुराना सिद्धान्त है।'—अलका ने टोककर कहा!'

विबुध बोला='प्रजा राजाके आदर्शका अनुकरण करती है। भरत

के काल के मानव विचक्षण और विवेकी थे। अपने स्वार्थ के लिये भी वे किसीको कष्ट नहीं पहुचाते थे। जैसी उनकी करनी थी वैसी उनकी भरनी थी-वे सुखी थे और उनके सुखमें राजाका भी सुख था। एक दिन अलका, भरत म० बहुत बेचैन हो गये।'

'क्यो ?क्या बात थी?'—अलका ने पूंछा।

विबुधने उत्तरमें कहा—'भरत म० ने उस दिन रात में सोलह स्वप्न देखे थे। वह स्वयं एक अच्छे ज्योतिर्विद थे, परन्तु फिर भी उन स्वप्नो का अर्थ-वह ठीक–ठीक लगाने में असमर्थ थे। उनकी बेचैन का यही कारण था और उसे मिटाने के लिए उन्हो ने अपने पिता के पास जाना उचित समझा। भरत कैलाश पहुंचे और भ० ऋषभ की वन्दना की। समुचित अवसर देखकर भरतने अपने स्वप्नोको उन्हें क्रमशः कह सुनाया और पूंछा–'पूज्य! कैसे है ये स्वप्न ?'

'तो भ० ऋषभ ने क्या उत्तर दिया?'—अलका ने पूंछा।

उत्तर देते हुये विबुधने बताया—'भ० ऋषभ ने इन स्वप्नों का अर्थ क्या बताया, अलका, उन्होने तो पंचमकाल के आगे आने वाले समय का चित्र ही खीच दिया! लोक का भविष्य बड़ा ही भौंडा, भृष्ट और भयंकर घोषित कर दिया!'

'भगवान ने ठीक ही घोषित किया, भैया!- देखते नही आजके लोगो को। उनकी बात सोलह आना सही सिद्ध हो रही है।'—अलका ने गभीर होकर कहा।

भ० ऋषभ सर्वज्ञ और सर्वदर्शी जो थे'—बात को आगे बढ़ाने के लिये विबुध ने कहा–'वह भविष्यवाणी करने के अधिकारी थे—उन्होने जो बताया वह सही उतर रहा है। भरत ने एक एक कर के स्वप्न सुनाये, जिनकी व्याख्या उसी क्रमानुसार भगवान्ने की। पहले स्वप्न में भरत ने एक गहन वन में २३ सिंहो को विचरते देखा। वे धीरे २ पर्वत पर चढ रहे थे और उस की चोटी पर पहुंच गये। वहां उन्होने सिंहगर्जना की और फिर पर्वतके उसपार आंखो से ओझल हो गये। हां, उन की गर्जन हवा में गूंजती-हुई सुनाई दे रही थी!

'बड़ा विलक्षण स्वप्न देखा भरत म० ने !'—अलकाने आश्चर्य से कहा !'

किन्तु विबुधने उसकी ओर कुछ ध्यान न दिया। उसने कहा:— 'भ० ऋषभने २३ सिंहो को २३ तीर्थंकरो का प्रतीक बताया, जो भ० ऋषभ को बाद यहा हुए और कहा कि उनके निर्वाण जाने के पश्चात् यहा उन के उपदेशो की गूंज ही शेष रहेगी। भरत ने यह सुनकर सतोष व्यक्त किया और दूसरा स्वप्न बताया, जिस मे उन्हो ने देखा था कि एक सिंह के पीछे बहुत से हिरण चले जा रहे है। भ०ऋषभने इसका अर्थ यह बताया कि वह सिंह २४वें तीर्थंकर भ० महावीर का प्रतीक है और उसके पीछे चलनेवाले हिरण भ० महावीर के धर्मानुयायी है जो हिरण की तरह ही अशक्त और भीरु है। ये लोग तीर्थङ्कर के पदचिन्हो पर चलना तो चाहेंगे, परन्तु चल न पायेंगे। यह भी सभव है कि ये मोक्षमार्ग से भटककर झूठे सिद्धान्तो का प्रचार करने लगेंगे। शक्तिहीन होने के कारण वे कठिन तपस्या से विमुख होकर सरल मार्ग ढूढेंगे!'

'भगवानकी वाणी सच ही उतर रही है। आज जैन सघमे अनेको सम्प्रदाय हैं'—अलका ने एक गहरी सास खींचकर कहा !

'अनेक सम्प्रदाय तो है'—विबुध ने तर्क किया—'किन्तु उस पर भी सब ही जैनो को एक होकर रहनेका प्रयत्न करना चाहिये।'

'यह आप ठीक कहते है—अल्पसख्यक जैनोको आजकल संगठित होकर परस्पर मेल से रहने की बहुत भारी जरूरत है।'—अलका ने पते की बात कही।

विबुध ने सिर हिलाकर उसकी सराहना की और आगे तीसरा स्वप्न बताया जिसमें भरत म० ने एक घोड़े को हाथी के बोझ से दबा जारहा देखा। भ० ऋषभ ने बताया कि यह घोड़ा सन्तोका प्रतीक है और हाथी सत्ता—शक्ति का! पंचमकाल में सत्ता अपने ऊपर ऐसी सत्ताओ का आरोप मान बैठेंगे जो उन्हे दबा देंगी। साधु लोग भी शक्ति हथियाने के पीछे पड़ेंगे जिससे उन की आत्मा दब जायगी। वे साधु ही न रह पायेंगे। निस्सन्देह आज सच्चे साधुको पा लेना दुर्लभ है!'

चौथे स्वप्नमे भरत म० ने अनेक बकरियो को सूके पत्ते चरते हुये देखा। भगवान्‌ने इसके दो अर्थ बताये। बकरिया जनता की प्रतीक हैं। पंचमकाल मे जनसाधारण अभक्ष्य और अनुपसेव्य पदार्थों का सेवन करने लगेंगे। अथवा इस युगमें सूखा और अकाल पड़ेंगे और अन्नकी कमीका जोर होगा। लोग विवश हो अखाद्य-खाद्य भक्षण करेंगे, जिससे उनका स्वास्थ्य खराब होगा। उनकी सन्तान बकरीकी तरह कमजोर होगी!

'आजकल यह सब बाते प्रत्यक्ष दिख रही हैं। अन्नकी कमीके कारण लोग भक्ष्याभक्ष्यका विवेक खो बैठे हैं और दुखी हो रहे हैं।' अलकाने कहा।

'शासन भी तो जनताको अभक्ष्य भक्षणकी ओर प्रोत्साहित कर रहा है। जिससे समाज मे विषमता और अपराध बढ़ रहे हैं।'—विबुधने बताया और आगे कहा कि 'भरत म० ने पांचवें स्वप्न में देखा कि हाथी की पीठ पर मनुष्यके स्थान पर बन्दर बैठा हुआ है! भ० ऋषभने इसका अर्थ यह बताया कि हाथी सत्ताका प्रतीक है। कलिकालमें सत्ता,- चाहे वह धर्मसत्ता अथवा समाज सत्ता—सत्पुरुषो के हाथसे हठकर ऐसे लोगोके हाथमें पहुंचेगी जो पशुओ से मिलते जुलते होगे। राजसत्ता क्षत्रियोके हाथमें नही रहेगी! धर्मसत्ता मानवता की भावनासे रिक्त पाखडी लोगोके हाथोमें पहुंच जायगी। समाजमें पाशविक वृत्तिया बढ जायगी—सत्ताके लिये आयेदिन संघर्ष और युद्ध होगे। सत्ता की छीनाझपटी में बन्दर बाट—राष्ट्रो मे नितनये 'पैक्ट'-हुआ करेंगे। धर्म राजनीति और समाजमें छल—कपट, चोरी सीना जोरी,स्वार्थ और वैमनस्य बढ़ जावेंगे। चरित्रवान और ईमानदार आदमी ढूंढे न मिलेंगे।'

'अहा! कालिकालका कितना सही चित्रण किया था भगवान् ने?'—अलकाने श्रद्धाविह्वल होकर कहा।

'भ० ऋषभ सर्वज्ञ और सर्वदर्शी जो थे!'—विबुधने उनके उत्कर्षको प्रगट करके आगे कहा— भरत म० भगवान्‌के मुखसे भावी-कालमें मानवके पतन और दुर्दशाकी दुख-गाथा सुनकर हैरान हो रहे थे। आगे उन्होंने छटे स्वप्नमें बताया कि एक हंसको घनमिनत

कौवे मिलकर मार रहे हैं। भगवानने कहा कि इसका अर्थ स्पष्ट है–कलियुगमें ज्ञानी और विवेकी सज्जनो पर धूर्त और पाखडी मानव कौवे आक्षेप करेंगे और उन्हें तरह-तरहके कष्ट देंगे, क्योकि उन धूर्तोंकी संख्या नित्यप्रति बढेगी। सच्चे विद्वानों का सम्मान न होगा सच्चे साधुओ को कोई पूंछेगा नही बल्कि उनको नानाप्रकार की यातनाये सहना पडेगी।'

'यही कारण है कि अब सच्चे साधु दुर्लभ हो रहे हैं।'–अलकाने धीरेसे कहा! किन्तु विबुध अपनी बात कहता ही गया। उसने कहा 'सातवें स्वप्नमे भरत म० ने भूत प्रेतोको नाचते हुए देखा। भगवान ने इसका अर्थ बताया कि भावीयुगमे लोग भूठे देवताओ को पूजेंगे और आध्यात्मिक ज्ञानसत्ता को छोड़कर लोग राक्षसी सत्ताओं के उपासक हो जावेंगे। लोगो के स्वास्थ्य अभक्ष्य भक्षणके कारण इतने हीन और क्षीण हो जावेगे कि वे प्रेतसे जान पड़ेगे। उनके शरीरका कद घटते घटते एक हाथ(डेढ फुट)का रह जायगा और आयु घटकर २४ वर्ष ही की रह जायगी। कभी २ बीच में आयुकाय बढते हुए भी दीखेंगे। परन्तु मानवका निरन्तर पतन ही होता जावेगा!'

'कालकी विषमता को कौन रोक सकता है! काल तो वह पैनी छैनी है जो चुपके चुपके ऐसे काटती है कि उसके प्रयोग प्रहार का पता भी नही चलता!'–अलकाने गभीर होकर कहा।

'इतना होने पर भी घमडी मानव सत्यको नही देख पा रहा है–करनीका प्रभाव अटल है! मनुष्य ठीक करनी करे, समय यही तो कहता है।' विबुधने समयकी महत्ताके साथ मानवकी अपूर्व शक्ति का भी उल्लेख किया। उसने बताया कि 'सच्ची करनी समय की अनीको भी चुका देती हैं, किन्तु जब मानव सत्यको आंखोके आगेसे ओझल कर देता है तब समयकी बन आती है। भरत म० के स्वप्न यही तो बता रहे हैं। आठवें स्वप्नमे उन्होंने देखा कि एक तालाब है जो बीचमे सूखा हुआ है, परन्तु उसके आसपास पानी भरा हुआ है। भ० ऋषभने कहा कि यह तालाब ससार का प्रतीक है जिसका मध्यभाग आर्यावर्त है। एक समय आयेगा जब यहा ज्ञान और संस्कृति नही रहेगी–धर्मका सूखा पड़ जायगा और आसपासके देश

ज्ञान और संस्कृतिमें फलते फूलते दीखेंगे। भरत यह सुनकर चिन्ता मे पड़ गये। इसपर भगवान्ने उनको प्रोत्साहन दिया और कहा— 'चिन्ता करनेसे कुछ सरे-घरेगा नही। अच्छा तो यह है कि अपना कर्तव्य निभाओ।' भरतने मस्तक नमाकर उनका आदेश स्वीकारा।'

'पुरुषार्थी परस्थितियोको चीर कर आगे बढता है और अपने सुन्दर भविष्यका निर्माण करता है। ससारसे डरता नही, बल्कि उसके स्वरूपको पहिचानकर ठीक पुरुषार्थ करता है।'—अलकाने बीच मे कहा।

'अलका, अब तो तुम्हारी वुद्धि तत्वकी तहमें पहुंचने लगी है।'— विबुधने कहा और वह आगे भरत म० के स्वप्नो की चरचा करने लगा। नवे स्वप्नमें भरत म० ने देखा कि हीरोका ढेर है जो मिट्टीसे ढका हुआ है, उसमें कोई आभा नही है। म० ऋषभने इसका अर्थ बताया कि ज्ञान, भक्ति, श्रद्धा आदि हीरे हैं जो अज्ञान एव अश्रद्धा रूपी मिट्टीके नीचे दब जायेंगे। यद्यपि इसमें शक नही कि धर्म पचमकालके अन्तिम क्षणो तक अपनी क्षीण आभा दिखाता रहेगा। सघमें वह जुगनू की तरह चमकेगा। अलवत्ता छटे कालमें धर्म मिट जायगा और खडप्रलय उपस्थित होगी।'

'बडा भयकर काल होगा वह!'—अलकाने घबडा कर कहा।

किन्तु विबुध ने सान्त्वना भरे शब्दो मे उत्तर दिया — अवश्य! होगा तो किन्तु तूफानके बाद नई दुनिया बसेगी—शान्ति और सुख का साम्राज्य आयेगा। अतः भयभीत और हताश होने के लिये कोई कारण नही है। भरत यह सुनकर घबडाये नही, बल्कि बोले कि दसवें स्वप्नमे तो बड़ा अद्भुत दृश्य देखनेको मिला। एक कुत्ता सोने की थालीमें रक्खी हुई मिठाइयां उड़ारहा है और लोग उसका आदर कर रहे है। इसका अर्थ भी विलक्षण था। कुत्ता नीच व्यक्ति का प्रतीक है। पंचमकाल में नीच व्यक्ति मौज मजे में रहेंगे और पूजे जायेंगे, आगे के दो स्वप्नोमे भरत म० ने बैल देखे ग्यारहवें स्वप्नमें एक जवान बैल चिल्लाता हुआ निकला और बारहवे मे दो बैल कधे से कंधा मिलाये चले जारहे थे। ये बैल पचमकाल के जैन मुनियों के द्योतक हैं, जो जवानी में मुनिव्रत तो लेंगे परतु धर्मप्रचार

के लिए अकेले भ्रमण करने की हिम्मत न करेंगे।'

'आजकल यही तो हो रहा है। एक-एक मुनिके साथ अनेको स्त्री-पुरुष परिग्रह की पोट बाधकर चलते हैं!'—अलका ने कहा।

'अलका, सच तो यह है कि यह समय साधुता का है ही नही।'-विवुध ने कहा और बताया कि अनधिकृत च्येष्टा करने से मनुष्यको लज्जित और दुखी होना पड़ता है। आजकल जैनसघ में यही दिख रहा है—सच्चे साधु तो विरले ही है। और तेरहवे स्वप्न में भरत म० ने देखा कि चन्द्रमा पर धु ध छाई हुई है। भ० ऋषभने बताया कि चन्द्रमा आत्मा का प्रतीक है। पचमकाल मे आत्मा कलुषित हो जावेगी और सद्भावनाये नष्ट हो जावेगी—आत्मज्ञान नही रहेगा।'

'आजकल, सचमुच, सभी लोग अंग्रेजी पढने की ओर भाग रहे है। आत्मज्ञान की ओर से सभी विमुख है।'—अलका ने स्पष्टीकरण किया।

'चौदहवे स्वप्न में भरत म० ने सूर्य को मेघाच्छन्न देखा।' विवुधने आगे कहा—'भगवानने बादलो से घिरे हुये सूर्य को देखने का फल यह बताया कि पचमकालमे कोई भी 'सर्वज्ञ'केवली न होगा। सभी अल्पज्ञानी होगे भरत म० पचमकाल की विषैली बातोंको सुन २ कर अचंभा कर रहे थे, परन्तु आज वह सब—कुछ आखो से देखा जारहा है। आजके लोगोको लाख उन्नति करने पर भी सुख-शान्ति नही मिल रही है। ऐसा बुरा ज़माना है। किन्तु भ० ऋषभने पद्रहवे स्वप्नका दुखद परिणाम ऐसा ही घोषित कर दिया था—सूखा वृक्ष यही सकेत करता था, धर्म भाव के अभाव मे तृष्णा बढ़ती ही है और सुख—शाति मिटती है;'

'आश्चर्य हैं, मानव इस सत्यको नही पहिचान पा रहा है!' अलका ने अचभे से कहा!

'यदि ऐसा ही होता तो कलिकाल बदनाम कैसे होता?'-विवुधने प्रश्न किया और आगे बताया कि अन्तिम स्वप्नमें, भरत म० ने सूखे पत्ताका ढेर देखा। उसके सकेतको ठीक-से वह समझ न पाये। भगवान्‌ने उनको बताया कि पचमकाल मे औषधियां अपनी शक्ति खो बैठेंगी, जिससे बीमारियो का प्रकोप बढ़ जायगा। भरत

म०अपने स्वप्नोंका यह भयंकर परिणाम सुनकर चकित हो भगवान के चरणोमें नतमस्तक हो गये। महान् पुरुषोकी शरण ही कल्याण भाजन होती है।'

'स्वप्नो के निमित्त से भविष्यका कितना सुन्दर और सच्चा निरूपण भ० ऋषभ ने किया, यह देखकर मेरा हृदय चकित और नम्रीभूत हो रहा है।'—अलका ने कहा।

विबुध बोला—'स्वप्न शास्त्र भी मनोविज्ञान का अङ्ग है। स्वस्थ अवस्था में दिखनेवाले स्वप्न सत्य होत हैं-वे शुभ और अशुभ दोनो प्रकार के हो सकते हैं। भरत म० ने अपने शरीर की स्वस्थ अवस्थामें उपरोक्त स्वप्न देखे थे इसीलिये वे सत्य थे और उनका फल भी सच्चा घटित हो रहा है!' इसके उपरान्त दोनों ही स्वाध्याय-कक्ष के बाहर हो गये। और भगवान् की कही हुई भविष्यवाणी पर रह रह कर सोच विचार करते रहे।



वैदिक मान्यतामें ऋषभ अथवा वृषभदेव !

'आ नो गोत्रा दर्द हि गोपते गाः समस्मभ्यं सुनयो यन्तु वाजाः।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मोऽस्मभ्य सु मघव न्बोधि गोदाः॥२१॥"

—ऋग्वेद, मंडल ३ अ०२ सू ३•

जैसे ही विबुध ने पुनः स्वाध्याय कक्ष में प्रवेश किया वैसे ही अलकाने उससे प्रश्न किया कि भ० ऋषभ या वृषभको वैष्णवादि वैदिक धर्मावलम्वी विष्णु अथवा शिवका अवतार मानते है, फिर वह तीर्थंङ्कर कैसे रहे?' विबुध सुनकर मुस्कराया और बोला—'स्वय वैदिक ग्रंथों से वृषभका आदि तीर्थंकर होना सिद्ध है। पहले ही 'ऋग्वेद' का उक्त मत्र देखो, जिसका अर्थ निम्न प्रकार है:—

"हे पृथ्वी के पालक देव ! हमें नयसहित वाणियों को प्रदान कर आदर युक्त बना, जिस से हम अपनी वृत्तियों और इन्द्रियों को संयत रख सकें ! हे वृषभ ! तू सूर्य के समान सब दिशाओं में प्रकाशमान है और तू सत्य के कारण बलवान है ! हे ऐश्वर्यमय मघवन्, हमें सुबोधि प्रदान कर !',

'देखा अलका ! वैदिकऋषिने उक्त मार्मिक शब्दोमें भ० ऋषभकी मंगल विनय करके उस दिव्य वाणी को पाने की अभिलाषा प्रगट की है जो नय-सहित है और इन्द्रियोको संयत रखनेके लिये प्रसिद्ध है। और यह तुम जानती ही हो कि जिन वाणी ही निस्संदेह वह वाणी है जो अपने सप्तभग-नयवाद एवं संयम विधि-विधानके लिये लोक में प्रसिद्ध है। वैदिक ऋषि भ० वृषभ की तुलना, ठीक जैन

शास्त्रकार के समान सूर्य से कर रहे है। और सुबोधि का दान मांग रहे हैं। 'सुबोधि' जैनो का पारिभाषिक शब्द है जो सम्यग्दृष्टि का द्योतक है। भ० वृषभकी वन्दना करके वैदिक ऋषि लोगोसे कहते हैं:-

"प्रे होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् ।
विपीं ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥ ५॥ ७॥"

—ऋग्वेद, म० ३, अ०१, सू१०

हे विद्वान् लोगो ! आप लोग विद्वान पुरुषोंके बीचमें ज्ञानमय ज्योतियों को धारण करनेवाले परम श्रेस्ठ विद्वान के समान ज्ञान प्रकाश और बहुत बडे पूर्वों द्वारा अभ्यस्त वाणी को देने और धारण करनेवाले परम विद्वान् और परमेश्वर के लिये बृहद भेंट लाओ और बड़ा ज्ञान प्राप्त करो।'

'वैदिक ऋषि लोगोको उनका जीवन-मार्ग प्रशस्त बनाने के लिये उक्त प्रकार उपदेश देते हैं कि वे उन परमविद्वान् परमेश्वर-जीवन्मुक्त परमात्मा की शरण में पहुचकर उनसे ज्ञान प्राप्त करे, जो ज्ञान प्रकाशक है, पूर्वों की वाणी के अभ्यासी है और विद्वान पुरुषो की सभा से वेष्टित है। इस वर्णन को पढ़कर जरा भी शङ्का नही रहती कि वैदिक ऋषियोंको उन परम विद्वान् परमेश्वर तुल्य महापुरुष का परिचय था जो पूर्ण ज्ञानी थे और पूर्व (ग्रंथो) के अभिवचनोके अभ्यासी और सभाभवन (समव शरण) में विद्वानो से वेष्ति बैठते थे। जानती हो अलका, ये विशेषण किनके लिये सार्थक सिद्ध होते हैं?'

'एक तीर्थङ्कर भगवान् के लिये!' अलका ने विस्मय से उत्तर दिया और कहा—'तीर्थंकर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होने से पूर्णज्ञानी हैं और उनकी द्वादशाङ्ग-वाणीमें 'पूर्व' ग्रन्थोका विशिष्ट स्थान है—जैनो के अतिरिक्त किसी भी दूसरे मतमें 'पूर्व' नामक वाणीका उल्लेख नही है और तीर्थंकर ही समवशरण में विद्वानोके बीचमें बैठते हैं। बड़े २ लोग अक्षतादि भेंट लेकर उनकी वन्दना करने जाते है। अत. अब मुझे विश्वास हो गया कि वृषभ जैनोके ही आदि तीर्थंकर है।'

'निस्सदेह अलका, ऋषभकी मान्यता तीर्थंकर रूपमे ही स्वाभाविक सिद्ध होती है'—विबुधने यह कहकर बातको आगे बढाया। वह बोला—'अवतार वादका सिद्धान्त वैदिक-कालका नही है। वह

तो पौराणिककालमें उद्भूत हुआ है। डॉ० मंगलदेव शास्त्री स्पष्टतया यही लिखते हैं, यथा: *'वैदिक तथा प्रचलित पौराणिक उपास्य देवों और कर्मकाण्डों की पारस्परिक तुलना करने से भी हम वरवस इसी परिणाम पर पहुंचते हैं कि प्रचलित हिन्दू देवताओं और कर्मकाण्ड पर एक वैदिकेतर, और बहुत अंशोंमें एक प्रागैतिहासिक परम्परा की छाप है।'** और इस प्रागैतिहासक, परम्परामें वह जैनधर्म की भी गणना करते हैं। वह लिखते हैं कि *'जैन दर्शनकी सारी दार्शनिक दृष्टि वैदिक दार्शनिकदृष्टि से स्वतन्त्र ही नहीं भिन्न भी है, इस में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त दार्शनिक धारा को हमने ऊपर जिस प्राग्वैदिक परम्परा से जोड़ा है, मूलतः जैन दर्शन भी उसी के स्वतन्त्र विकास की एक शाखा (अर्थात् कड़ी हो सकना) है।'*× जब जैनधर्म प्राग्वैदिक कालसे अस्तित्व मे रहा तो उसके इस युग कालीन आदि प्रवर्तक तीर्थङ्कर ऋषभ अथवा वृषभ होना ही चाहिये।

'यह तो स्पष्ट ही दिखता है।'—अलका ने कहा।

विबुध ने आगे इस तथ्य को पुष्ट करने के लिये कहा-'जब पुरानी भारतीय सस्कृति से वैदिक आर्यों ने समन्वय किया तब उन्हो ने जैन तीर्थकर ऋषभ, अजित आदि को सम्मान दिया और उनके भी गीत गाये। यहाँ तक कि पौराणिककालमें ऋषभदेव को आठवा अवतार ही घोषित किया!'

'पास्परिक मेलमिलाप का यह बहुत सुन्दर उदाहरण है।'—अलका बोली।

विबुधने सिर हिलाकर उसकी बात को बड़ा किया और कहा 'पुरातत्वकी साक्षी भी इस तथ्यका समर्थन करती है। डॉ० गुस्टॉफ रॉथ ने लिखा है कि 'कई जैन शिलालेख, जिनमे ऋषभ एवं अन्य तीर्थंकरो का उल्लेख किया गया है, हिन्दू पुराणो से प्राचीन हैं। अतः यह नही माना जा सकता कि जैनो ने अपने पहले तीर्थंकर की मान्यता को हिन्दू 'विष्णु पुराण' (२।१) से लिया हो[१]!' बात तो

---

* श्रीमद् विजयराजेन्द्र सूरि-स्मारक-ग्रंथ, पृ० ३७१

× 'जैनदर्शन' (बनारस), प्राक्कथन पृ० १०

१. दी हिस्टॉरिसिटी ऑव दी तीर्थंकराज़, पृ० २७

यह हैं अलका कि भ० ऋषभ अथवा वृषभ उस प्रागैतिहासिक कालीन अखंड भारत के महापुरुष है जिस मे श्रमण और ब्राह्मणो में कोई भेद न था। यही कारण है कि ऋषभ श्रमणोके आदि पुरुष हैं और वैदिक आर्यो के आठवें अवतार !'

'भइया, यही ऐतिहासिक तथ्य प्रतीत होता हैं; किन्तु इससे एक बात यह भी मानना होगी कि भारत में प्रागुवैदिक आर्यों के अतिरिक्त अन्य लोग और उनके धर्म प्रचलित थे !'—अलका ने पूंछा।

'यह तो वैदिक उल्लेखोसे ही स्पष्ट है, अलका'-विवुध ने उत्तर देते हुए कहा और वताया कि 'अथर्ववेदके पृथ्वी सूक्तमें ऐसे प्राचीन असुरादि एव उनके धर्मोका उल्लेख है।'यस्यां पूर्वे पूर्वजनाविचक्रिरे यस्यां देवा असुरान-भ्यवर्तयन् (१२।१।५)—अर्थात्-'जिस पृथ्वी पर पुराने लोगो ने विभिन्न प्रकारके कार्य किये थे और जिस पर देवताओ ने 'असुरो' पर आक्रमण किये थे'—इस से असुर लोगो का अस्तित्व सिद्ध है और असुर जैनधर्म के अनन्य भक्त थे—जैन ग्रंथो में असुरोंको तीर्थंकर-भक्त देवो एवं मनुष्यो के साथ २ लिखा है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त के'जनं विभ्रती वहुधा विवाचसं नाना धर्माणम्' (१२।१।५४) मंत्र वाक्यसे इस देशमे अन्य भाषाओ और विविध धर्मोंका प्रचलन स्पष्ट होता है। 'ऋग्वेद में वैदिक देवाताओ के प्रति विरोधी भावना रखने वाले दास जातिके लोगोका भी उल्लेख है जो स्पष्ट. 'अयज्यव' या 'अयज्ञा' एव 'अनिन्द्र कहे गये है। अत' यह स्पष्ट है कि वेदोके समयमें ही नही, वल्कि उनके पहले से अनेक प्रागैतिहासिक धर्म यहां प्रचलित थे और उनमे जैनधर्म भी एक था।'

'निस्सन्देह वैदिक शास्त्रीय उल्लेखो एव पुरातत्व की साक्षीसे यही बात प्रमाणित होती है।'—अलकाने प्रसगको पुष्ट किया।

विवुध वोला—'उपलब्ध साक्षीसे ऐसा स्पष्ट होता है कि प्रागैत-हासिक भारत में श्रमण परम्परा और वैदिक परम्परा—दोनो ही परम्पराओ के लोग रहते थे। वैदिक परम्परा के लोग चाहे बाहर से आकर यहा वसे हो अथवा मूलतः सप्तसिंधु प्रदेसके निवासी हो श्रमणो से आचार-विचारमें नितान्त भिन्न थे। उनका मत प्रवृत्ति पोषक था और वे यज्ञ खूब किया करते थे, जिनमें एक समय पशु भी

होमे जाने लगे थे। इसके विपरीत श्रमण लोगें निवृति परक मतके अनुयायी थे—मुक्ति पाना उनका ध्येय था। उनकी पूजा अक्षत-पुष्प नैवेद्य-जल श्रादिसे की जाती थी। वे पूर्ण शाकाहारी और जीवदया प्रेमी थे। जबकि वैदिक परम्परा का प्रभाव अफगानिस्तान से लगा कर कुरुजांगलप्रदेश तक फैला था, तब श्रमण परम्परा गगा-यमुना की उपत्ययका से लेकर मगध और कलिङ्ग तक फैली हुई थी!'

'किन्तु भइया, एक बात तो बताइये?'—अलकाने पूछते हुए कहा—'यह भेद क्या भ० ऋषभदेवके समय से ही हो गया था?'

विबुध ने उत्तर में बताया—'ऐसी बात तो नही है। ऋषभ देव के समय में यद्यपि उनके पोते मरीचिने मिथ्या मत का उपदेश दिया था, परन्तु वह पनपा नही। ऋषभदेव और उनके पश्चात् कई तीर्थंकरोके समय तक अहिंसा धर्मकी परम्परा अक्षुण्ण चलती रही। श्रमण और ब्राह्मण, दोनो ही उनके अनुयायी रहे। किन्तु दसवे तीर्थंकर शीतलनाथ के समय से दान सम्बन्धी क्रिया काण्ड के कारण मतभेद उपस्थित हुआ, जो १९वें एव २०वे तीर्थंकर मल्लि-मुनिसुव्रतके समय में इतना बढा कि वैदिक परम्परा मे हिंसा का समावेश हो गया। मध्य ऐशिया से आमिषभक्षी असुर भारत मे घुस आये और उन्हो ने कतिपय ब्राह्मणो को जादूटोना करना और पशुओ की बलि देना सिखाया। ऋषि नारदने इसका घोर विरोध किया—जैन श्रमणो ने तो इस हिंसक प्रवृति में घोर सघर्ष ही छेड़ दिया था। इस प्रकार की वस्तुस्थिति का उल्लेख 'महाभारत' और जैनो के 'पद्मपुराण'-'वसुदेव हिंडि' आदि ग्रंथों मे देखने को मिलता है[2]।'

'क्या, वेदो में ऐसे उल्लेख है जिनसे इस विरोधकी पुष्टि होती

---

१ डॉ० मङ्गलदेव शास्त्री का 'भारतीय सस्कृति के आधार' शीर्षक लेख 'श्रीमद् राजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रंथ' (पृ० ३६५) में देखिये एवं डॉ० सुनीतिकुमार चाटर्जी का अध्यक्षीय भाषण आलइंडिया ओरियंटल कॉन्फ्रेन्सकी प्रोसीडिंग्समें पढिये। (पृ० १५–६०)

२. 'अहिंसा-वाणी' का 'तीर्थंकर मल्लि, मुनिसुव्रत एवं नमि' (१९५८) विशेषाक देखिए।

हो ?' अलका ने आगे पूछा।

विद्युधने उत्तरमें कहा-'हा,वैदिक उल्लेखोंसे स्पष्ट है कि वैदिक कालमें एक ओर तो इन्द्रको माननेवाले लोग थे।(इन्द्रो मुनीनां सखा' ऋग्वेद ८।१७।१४) और दूसरी ओर इन्द्र के विरोधी यति लोग थे। (इन्द्रो यतीन सालवृकेभ्यः प्रायच्छत्!) 'तैत्रियसहिता' (६।२ ७५) मे लिखा है कि 'इन्द्र ने यतियो को भेडियो के आगे डाला जिन्होंने उनको उत्तर वेदी में भक्षण कर लिया।' इससे भी यह बात स्पष्ट होती हैं कि यति लोग वेद विरोधी थे! अथर्ववेद (२।५३) से भी यतियो के प्रति विरोधभाव होना स्पष्ट है। यह यतिगण नगे रहते थे और इनके देवता भी नगे थे,जो शिश्नदेव कहलाते थे। 'ऋग्वेद' ७।२२।५ एवं १०।९९।३ में इन्द्र से प्रार्थना की गई है कि वह नगे देवो (शिश्नदेवो) से वैदिक यज्ञो की रक्षा करें और इन्द्र ने यह प्रयत्न किया कि वह नगे देवो को यज्ञो के पास फटकने न दे, बल्कि अनेको को इसने नष्ट कर दिया।*

'अरे, इसका अर्थ तो यह होता है कि गतकालमें बड़ा सघर्ष हो चुका है —अलका ने जिज्ञासा के स्वर मे कहा, किन्तु विबुध ने उसका समाधान करते हुये कहा कि 'निस्सन्देह एक समय यह सघर्ष उग्ररूप धारण कर चुका था, किन्तु चू कि ऋषभ-अथवा वृषभ को दोनो ही परम्परावाले मान्य करते थे और उन्हो ने अहिंसा धर्मका उपदेश दिया था, अत. उपरान्त काल के तीर्थंकरो के प्रभावनुसार, वैदिकधर्म में पुनः अहिंसा की प्राणप्रतिष्ठा हो गई। दोनो मे मेल मिलाप हुआ और ज्ञान यज्ञ का महत्व बढ़ा। ऋग्वेद, (४।५८।३) ने घोषित किया:—

'त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीती।
महोदेवो मर्त्यानाविवेश॥'

अर्थात्—'मन, वचन, काय—तीनो योगोसे संयत वृषभ (ऋषभदेव) ने घोषणा की कि महादेव मर्त्यों में आवास करता है' अर्थात् प्रत्येक प्राणीके अन्तरमे परमात्मा का आवास है। तीर्थङ्कर ऋषभ ने योग चर्या के द्वारा उस परमात्मा पद को पाने की शिक्षा लोगो को दी थी। इसीलिये 'ऋग्वेद' मे कहा गया है कि 'ऋषभ स्वय

आदि पुरुष थे जिन्हो ने सब से पहले मर्त्यदशा मे देवत्व की प्रा० की थी।' ('तन्मर्त्यस्य देवत्वमजानमग्र-३१।१७) अतः ऋषभ अथवा वृषभ वेदों के अनुसार भी सर्व प्रथम आदि देव प्रमाणित होते है, जिन्हो ने सब से पहले लोगो को धर्मोपदेश दिया था। मालुम है, अलका, भ० ऋषभ द्वारा जो धर्मोपदेश दिया गया था वही ग्रन्थबद्ध होने पर 'आगम' कहलाया—उस मे १४ पूर्व और ११ अङ्ग ग्रथ सम्मिलित थे।'

'इसका अर्थ तो यह हुआ कि वेदोंसे भी पहले 'आगम साहित्य' मौजूद था।'-अलकाने शङ्काकी। इस पर विबुध ने कहा-'निस्सदेह वेदोसे भी पहले—प्रागैतिहासिक कालमें आगम साहित्य विद्यमान था। संभवतः ऋग्वेद में उसी आगमका उल्लेख 'पूर्वस्यवच.' नामसे किया गया है। डॉ०सुनीतिकुमार जी चटर्जी का मत है कि प्राचीनकाल से 'निगम' और 'आगम' साहित्य का अस्तित्व भारतमें रहा है। 'आगम' को वह 'वैदिक साहित्य से भिन्न और अज्ञात काल से स्मृति में परम्परा द्वारा आया हुआ' बताते है। उसका उद्गम स्रोत भी वह अवैदिक—बहुत अंशोंमे द्राविड_मानते है। इसके विपरीत 'निगम' साहित्य 'अन्तर से उदभुत' और वैदिक होमविद्या का द्योतक वह अनुमान करते है[1]। जो भी हो, इससे स्पष्ट है कि प्राचीन प्रागैतिहासिक भारतमें जैसी दो धर्म परम्पराये थी; वैसे ही उन के अपने अपने साहित्य थे। डॉ० विन्टरनीज भी इसी परिणाम पर पहुंचे थे, क्योकि उन्होने लिखा है कि 'ई० पूर्व ४ थीं—५वीं शता- से भी पहले 'श्रमणसाहित्य' और 'ब्राह्मण साहित्य' विद्यमान था[2]। काव्यो और पुराणो में इस श्रमण साहित्य के उद्धरण मिलते हैं।' प्रो० यू० सी० भट्टाचार्य भी प्रागैतिहासिक भारतमें एक श्लोक बद्ध आध्यात्मिक ज्ञान सम्बन्धी साहित्य का अस्तित्व बताते है[3]। जिनेन्द्र वृषभकी वाणी पूर्वों और अङ्गोंमें श्लोक बद्ध ही थी। अतः

---

१. प्रेजीडेंशियल एड्रेस, ऑलइंडिया ओरियन्टल कॉन्फ्रेन्स अहमदाबाद (प्रोसीडिंग्स का पृष्ट ५५ देखिये।)

२ दी जैन्स इन दी हिस्ट्री ऑव इंडियन लिट्रेचर (अहमदावाद), पृ०५

३. इंडियन हिस्टॉरीकल क्वारटर्ली, भा० ३ पृ० ३०४—३१४

वेदोक्त 'पूर्व' नामक वाणी मे भ० ऋषभ की अहिंसा वाणी का समावेश होना स्वाभाविक है।'

'ऊहापोहात्मक विचार विमर्ष से तो यही प्रतिभाषित होता है क्यों कि वेद-वाक्य यही ध्वनित करते है !'—अलका ने भी कहा।

इसपर विवुध बोला—'ऋग्वेद' मे और भी कई उल्लेख हैं जिनसे इस बातकी पुष्टि होती है!'

'तो बताइये ना उनको!'—अलकाने पूछा।

अच्छा सुनो'—विवुधने कहा—'ऋग्वेद' (२४।१९०)में लिखा है:—

'अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं वृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कैः।
गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आशृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः ॥१४॥'

भावार्थ—'हे विद्वन् ! तू उस देव को जो अनर्वा अर्थात् स्वाश्रित है—पर वस्तु का आश्रय जिसे नही है, जो सुखो को वर्षा करनेवाला वृषभ है, जिस की वाणी हित-मित होने के कारण मन्द्रजिह्व है और ज्ञान विद्या का पोषक होने से जो वृहस्पति है उसे नये नये ज्ञान स्तोत्रो द्वारा बढा और उसकी गाथाको रुचि करके सुनो।'

इस में प्रयुक्त विशेषण वृषभदेव के लिये बिल्कुल ठीक बैठते है और खास बात यह है कि जिन वाणी गाथाबद्ध ही कही गई है!'

'हा—हा, जैन ग्रंथ गाथा छदमे रचे हुये होते ही है।'—अलका ने भी विवुध की बात को दुहराया। विवुध ने कहा—'निस्सदेह वैदिक ऋषियो ने वृषभदेव और उनकी वाणी के अनन्य गीत गाये हैं। ऋग्वेद (अ० २ सू० १६)-में फिर कहा है—

वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मिर्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोम वृषभाय सुष्वति ॥५॥'

भावार्थ—'धर्ममय ज्ञानकोष और मधुर वाणी की सुखवर्द्धक ज्ञानदीप्ति—ये दोनो सुखो के वर्षक प्रभु अर्थात् वृषभ के आनन्द को अन्न के समान उपयोग करनेवाले बलवान् आत्मा के पालन करने के लिये हैं। धर्ममय हिंसावर्जित—अध्वर्य—धर्मयज्ञो के करने वाले स्त्री पुरुष इससे अखडित ब्रह्मचर्यके पालक हो। लोग बलवान और ज्ञान जल एव सोम सदृश ओषधिरस तथा ज्ञानको उत्पन्न करें—वृषभसे ज्ञानको पावे।'

'साराश यह है, अलका, कि वेदोमे भ० ऋषभका यशज्ञान खूब ही किया गया है। वैदिक विद्वान् प्रो० विरुपक्ष वाडियार, वेदतीर्थ ने निम्नलिखित मंत्रो मे ऋषभ अथवा वृषभदेव का उल्लेख हुआ घोषित किया था:—

'समिद्धस्य प्रमहंसोऽग्ने वन्दे तवश्रियम् ।
वृषभो द्यु म्नवां असि समध्वरेष्विध्यसे ॥४॥
—(ऋग्वेद अष्टक ४ अ० १ वर्ग २२)

'मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमक बारिं दिव्य शसनमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम् ॥११॥'
—(ऋग्वेद ४ अ० ६ वर्ग ८)

'ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम् ।
हन्तार शत्रुणां कृधि विराज गोपत गवाम् ॥१॥'
—ऋग्वेद अ० ८ अ० ८ वर्ग २४

'एव बभ्रो वृषभ चेकितान् यथा देव न हृणीपे न हसि ।'
—ऋग्वेद २।३३।१५.

'अरे, ऋग्वेद में तो सचमुच ऋषभदेव के महती उल्लेख भरे हुये है ।'—अलका ने हर्षित होकर कहा ।

'हा'-विवुधने कहा—'लगता है कि 'ऋग्वेद' भ०ऋषभकी यश-गाथा गानेके लिये ही मानो रचा गया था। डॉ० हीरालाल जी जैन ने निम्नलिखित वेद-वाक्य में भी भ० ऋषभ का उल्लेख हुआ प्रमाणित किया है.—

ककर्दवे वृषभो युक्त आसीद्
अवावचीत् सारथिरस्य केशी
दुधेर्युक्तस्य द्रवत. सहानस
ऋच्छन्तिष्मा निष्पदो मुद्गलानीम् ॥
—ऋग्वेद १०।१०२।६

डॉ० सा० ने लिखा है कि 'जिस सूक्त में यह ऋचा आई है उसकी प्रस्तावनामे निरुक्तके जो'मुद्गलस्य हृता गावः'आदि श्लोक उद्धृत किए गए है उन के अनुसार मुद्गल ऋषिकी गौवों को चोर चुरा ले गये थे। उन्हे लौटाने के लिये ऋषि ने केशी-वृषभ को

अपना सारथी बनाया जिनके वचन मात्रसे वे गौएं आगे को न भाग-कर पीछेकी ओर लौट पड़ी। प्रस्तुत ऋचाका भाष्य करते हुए सायणाचार्य ने पहले तो वृषभ और केशीका वाच्यार्थ पृथक् बतलाया है, किन्तु फिर प्रकारान्तर से उन्होंने कहा है:—

'अथवा, अस्य सारथि संहायभूतः केशी प्रकृष्ट केशो वृषभोऽवावचीत् अशमशब्दयत्' इत्यादि।

'सायणके इसी अर्थको तथा निरुक्तके उक्त कथा प्रसंग को भारतीय दार्शनिक परम्परानुसार ध्यानमें रखते हुए प्रस्तुत गाथाका मुझे यह अर्थ प्रतीत होता है: मुद्गल ऋषिके सारथी (विद्वान् नेता केशी वृषभ जो शत्रुओंके विनाश करने के लिए नियुक्त थे उनकी वाणी निकली, जिसके फलस्वरूप जो मुद्गल ऋषिकी गौवें (इन्द्रिय) जुते हुए दुर्धर रथ (शरीर) के साथ दौड़ रही थीं वे निश्चल होकर मौद्गलानी (मुद्गल की स्वात्मवृत्ति) की ओर लौट पड़ी।' तात्पर्य यह कि मुद्गल ऋषिकी जो इन्द्रियां पराङ्‌मुखी थी वे उनके योगयुक्त ज्ञानी नेता केशी वृषभके धर्मोपदेशको सुनकर अन्तर्मुखी हो गई।'* जानती हो अलका भ० वृषभको इस ऋचामे 'केशी' क्यो कहा गया है?'

अलकाने सोचकर उत्तर दिया—'शायद इसीलिये कहा है कि भ० वृषभने छः-छः महीनेके लम्बे लम्बे उपवास किये थे—उतने लम्बे समय तक वह साधना में लीन रहे—उनकी वृत्ति अन्तर्मुखी रही—तनवदनकी उनको सुध न रही। इसीलिए उनके शिरके केश जटाओं में लम्बे-लम्बे बढ़ गए। कविवर दौलतराम जी ने उनकी इस आत्म-निष्ठ-दशाका चित्रण बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें किया है। सुनो भइया:-

'देखोजी आदीश्वर स्वामी कैसा ध्यान लगाया है।
कर ऊपर कर सुभग विराजे, आसन थिर ठहराया है ॥दे०॥
जगत विभूति भूति सम तजकर, निजानन्द पद पाया है।
सुरभित श्वासा, आशा-वासा, नासादृष्टि सुहाया है ॥दे०॥
कञ्चन वरन चले रञ्च-न सुरगिर ज्यों थिर थाया है।
जास पास अहि मोर-मृगी-हरि, जाति विरोध नशाया है।

---

* 'अहिंसावाणी' का तीर्थङ्कर भ० ऋषभदेव विशेषांक १९५७ पृ० २२-२१

शुध उपयोग हुताशन में जिन वसुविधि-समिध जलाया है।
श्यामलि अलकावलि शिर सोहै, मानों धुआं उड़ाया है ॥दे०॥
जीवन-मरण-अलाभ-लाभ जिन, तृण-मणिको सम भाया है।
सुर नर नाग नमहि पद जाके, 'दौल' तास जस गाया है ॥दे०॥

ऋषभदेव के केश बड़े-बड़े हो गये, इसीलिए लोग उनको केशी वृषभ कहने लगे थे।'

विबुधने प्रसन्न होकर कहा-'अलका, तुमने ठीक समझा! प्राचीन जैन परम्परामे ऋषभ-जटा-जूट-युक्त केशी ही चित्रित मिलते है और उनकी मूर्तियां भी जटाओ सहित बनाई जाती थी। जटाये उनके कंधो पर लहराती दर्शाई जाती थी। श्री यतिवृषभाचार्य ने 'तिलोयपण्णति' में लिखा है कि 'गंगाकूटके ऊपर जटारूप मुकुट से सुशोभित आदिजिनेन्द्र की प्रतिमाये है।' (आदि जिणप्पडिमाओ ताओ जड मउड सेहरिल्लाओ)। अपभ्रंश 'सुकुमाल चरित्रमें, भी प्रथम जिनवर को जटा मुकुटसे सुशोभित लिखा है (पढमु जिणवर-णाविव भावेण जडमउड विहूसिउ)। अत. ऋषभ तीर्थंकर को केशी वृषभ कहना ठीक ही है!'

-'लगता है, वेदो में वृषभ का वर्णन उनके विविध गुणो और रूपो को लक्ष्य करके किया गया है।'—अलका ने संकेत दिया।

विबुध ने उस के सुझाव को पुष्ट करते हुये कहा-'निस्सन्देह वेदो मे वृषभ का गुणगान नाना प्रकार से किया गया है। प्रो० चक्रवर्ती ने सिद्ध किया है कि वेदो के 'महाव्रात्य' अथवा 'ज्येष्ठ व्रात्य' भी वृषभदेव हैं[1]।'

-'वह तो होना चाहिये क्योकि जैन मुनियो और गृहस्थो—दोनो के लिये व्रतोका पालना अनिवार्य है। अकबरके दरबारमें जो जेसुट पादरी आये थे, उन्होने भी जैन साधुओका उल्लेख 'व्रती' (Vertie) नामसे किया था[2]।'—अलका ने बातको स्पष्ट करते हुये कहा।

इस पर विबुध बोला—'जैनो में विशिष्ट धर्मात्मा आज भी 'व्रती' कहे जाते हैं। वेदोमें उनको ही 'व्रात्य' कहा है और 'मनुस्मृति'

---

१. भगवान पार्श्वनाथ (सूरत) भूमिका,
२, सूरीश्वर और सम्राट् अकबर,

में इक्ष्वाकु, ज्ञातृ,लिच्छवि, द्राविड, आदि वर्ग के लोगो को 'व्रात्य' धर्म-भुक्त लिखा है और ये सभी जैन थे, यह इतिहास-सिद्ध बात है। मुनि सुशीलकुमार जी ने भी एक लेख लिखकर यही सिद्ध किया है और लिखा है कि व्रात्यो के आदिपुरुष भ० ऋषभ थे। स्वयं ऋग्वेद में भ० ऋषभदेव से प्रार्थना की गई है:—

"आदित्य त्वमसि आदित्य सद आसीत्-
अस्तभ्नादधां वृषभो अतरिक्षं जमि
ते वरिमागम पृथिका आसीत विश्व भुवनानि-
सम्राट विश्वेतानि वरुणस्य वचनानि।"

ऋग्वेद ३०।३

अर्थात्—'ऋषभदेव! सम्राट् ससार में जगतरक्षक व्रतो का प्रचार करो। तुम हो इस अखण्ड पृथ्वी के आदित्य सूर्य हो, तुम्ही त्वचा और साररूप हो, तुम्हो विश्वभूषण हो और तुम्हो ने अपने दिव्य ज्ञान से आकाश को नापा है।' मुनिजी ने अन्त में ठीक ही लिखा है कि 'वेद के आधार पर यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि व्रात्य सम्प्रदायके मूल सस्थापक और भारतीय सस्कृति प्रतिष्ठापक भ० ऋषभदेव थे। साराश यही है कि ऋषभदेव ने व्रात्य धर्म, त्यागधर्म और परमहसधर्म का प्रतिपादन किया जिसका अविकल अक्षुण्ण रूप जैनधर्म है। जैनधर्म और व्रात्य धर्म दोनो पर्याय हैं। व्रात्य धर्म आदि इतिहास वेद प्राक्कालोन से प्रवाहित है[१]।'

'मुनिजीका यह निष्कर्ष महत्वपूर्ण है-इस का आधार भी प्रामाणिक होगा?' अलका ने पूछा।

विबुध बोला—'प्रामाणिक तो है ही। 'अथर्व वेद'के १५वे काण्ड में व्रात्य—महिमा का जो वर्णन गाया गया है वह व्रात्यो के स्वरूप और महत्ता को स्पष्ट कर देता है। 'अथर्ववेद' (१५) में लिखा है कि 'जीवोके लिये जो हितकर उपदेश देते हैं अथवा व्रतमें दीक्षित हैं और व्रत का ही विश्व को विधान देते हैं वे व्रात्य कहलाते है।' वेदोके व्रात्य जैनोके महाव्रती मुनिअथवा यति है।''अथर्ववेद'(१५) के २२० मन्त्रो में महाव्रात्य का वर्णन तीर्थङ्कर ऋषभ के अनुरूप ही

१ श्रीमद्विजय राजेन्द्र सूरि-स्मारक-ग्रन्थ, पृ० ५११-५२७

हैं। वह 'प्रजापति' 'परमेष्ठी' और 'पितामह' जैनशास्त्रोके अनुसार ही कहे गये हैं। 'अथर्ववेद' मे लिखा है कि व्रात्य राजा हुआ-उससे ही राजधर्मका श्रीगणेश हुआ। प्रजा, भ्रातृभाव, प्रजातन्त्र आदि सभीका उसीसे उदय हुआ। व्रात्यने सभा समिति सेना आदिका निर्माण किया।' देखा अलका, भ० ऋषभका चरित्र ही मानो उसमें अङ्कित है!'

'मुझे तो यह साम्य देखकर आश्चर्य हो रहा है। सभी पुरातन भारतीय भ० ऋषभको अपना आराध्य मानते हैं—हमारे मेलमिलाप और एकताके लिए वह एक महान प्रतीक हैं।'—अलकाने कहा।

विबुधने मुस्करा कर कहा—'आजकी चरचा तो इतनी मार्मिक और आकर्षक हो रही है कि उसका छोर ही नही दिखता।'

'हा जी, वह है ही इतनी रोचक!'—अलकाने विबुधकी बात को बढाया। विबुध बोला—'अथर्ववेदसे यह भी स्पष्ट है कि ऋषभदेवने पहले पहले कृषि, मसि आदि कर्म करने की शिक्षा लोगोको दी थी। उनका कार्यक्षेत्र भी पूर्वप्रदेश जैन मान्यताके अनुरूप ही है। उन्होने अर्थात् महाव्रात्य ऋषभने तपके द्वारा आत्मसाक्षात्कार किया और महादेव बन गये (समहादेवोऽभूत्)। विश्व श्रद्धाके साथ उनके सामने नतमस्तक हो गया। वह व्रात्य एक वर्ष तक निरन्तर खड़े ही रहे और तपस्यामे लीन रहे। देवताओ ने कहा 'व्रात्य! किंतु तिष्ठसि?'-(व्रात्य! तुम क्यो खड़े हो?) परन्तु वह ध्यान लीन रहे और महादेव बने! वह प्रेमके राजा थे—संघतन्त्रकी नीव उन्होने डाली जिसमे पशु भी मानवके समतुल्य समझे जाते थे उन्हे कोई मार नही सकता था, क्योकि हिंसा निषिद्ध थी। ('नास्य पशून् समानान् हिनस्ति') देखा अलका, अथर्ववेदमे ऋषभदेव का व्रात्यरूप में कैसा मार्मिक चरित्र चित्रण किया गया है!'

'निस्संदेह भइया, वह ऋषभ-चरित्रके सर्वथा अनुरूप है।'—अलका ने कहा!

विबुधने प्रसन्नता प्रकट की। फिर वह आगे बोला—'श्री जय-भगवान जी वकीलने भी वेदोका अध्ययन करके तुलनात्मकरूपमे वृषभ मंगलगानकी कतिपय सूक्तिया उपस्थितकी हैं। पहले ही उन्होने 'अथर्ववेद' (१६।४२।४) का निम्नलिखित उद्धरण उपस्थित किया है:—

अंहो मुच वृषभं यज्ञियानं विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् ।
अपां नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण तमिन्द्रियं दत्तमोजः॥'

अर्थात्—'पापोंसे मुक्त, पूजनीय देवताओं में वृषभ व सर्वश्रेष्ठ, आत्मसाधकों में सर्वप्रथम तथा भवसागर के पोतको मै हृदय से आव्हान करता हूँ। हे सहचर बन्धुओ ! तुम आत्मीय श्रद्धा द्वारा उसके आत्मबल और तेजको धारण करो।'

'भक्तामर स्तोत्र' मे इससे मिलते जुलते शब्दों और भावो द्वारा ही भ० वृषभका मगलाचरण किया गया है। देखिये:—

'भक्तामर प्रणत मौलि मणि प्रभाणा-
मुद्योतक दलितपापतमोवितानम् ।
सम्यक प्रणम्य जिनपाद युगं युगादा-
वालम्बन भवजले पततां जनानाम् ॥'

अर्थात्—"मै उस आदि-जिनके चरण युगलको प्रणाम करता हूँ जो पापोके अन्धकारमय समूहके नाशक हैं। भक्तिसे विनम्र देवताओ की मुकट-मणियो की आभाको बढ़ाते हैं; तथा भवसागर से पार उतारने वाले है !'

'अरे ! इसमें तो बहुत ही साम्य है !'—अलकाने आश्चर्यान्वित होकर कहा !

विवुध बोला—'आगे ऋग्वेदकी निम्न० ऋचा (१।१,१-२)से यह भी स्पष्ट किया है कि भारतके पुराने और नये सभी ऋषि तथा देवेन्द्र ऋषभ भगवानका गुणानुवाद करते आये है। यथा:—

'अग्निमीडे पुरोहित यज्ञस्य देव मृत्विजम् ।
होतारं रत्न धातमम् ॥
अग्निः पूर्वोभिर्ऋषिभि रीड्यो नूतनै रुत ।
स देवाँ एह वक्षति ॥'

'वकील सा० ने 'यजुर्वेद' (३१।१८) के निम्नलिखित ऋचामें भ० ऋषभको ज्ञानसूर्य और धर्ममार्गका प्रणेता उसी अनुरूप पाया है जैसा कि उनको जैन शास्त्रोमे बताया गया है। देखिये—

'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

अर्थात्—"मैं उस आदि पुरुष को अन्धकार से परे रहने वाला, सूर्य-की-सी कान्तिवाला, सबसे महान् सूर्य जानता हूं। उस को यो जानकर ही मृत्यु को जीता जा सकता है। मोक्षसिद्धिके लिए इस के दिखाये मार्गके अतिरिक्त और कोई मार्ग नही है।"यही बात जैनाचार्य 'भक्तामरस्तोत्र'(२३)में इस प्रकार कहते है:—

'त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस—
मादित्यवर्णममलं तमसःपरस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्यु'—
नान्यः शिवःशिवपदस्य मुनीन्द्र पन्थाः ॥'

अथात्—'मुनिजन आपको ही पुरुषोत्तम, निर्मल, तमसे परे सूर्य की-सी कांति वाला मानते है। आप के ही उपदेशको पाकर भव्यजन मृत्यु को जीतते हैं। हे मुनीन्द्र! मोक्षसिद्धि के लिए आपके बताए मार्ग से भिन्न और कोई मार्ग नहीं है।'

'सचमुच इन तुलनात्मक उद्धरणोको देखते हुये कोई संशय नही रहती कि वेदो में तीर्थंकर ऋषभ का उल्लेख हुआ है और इसे डॉ० राधाकृष्णन सदृश विद्वानोने भी मान्य किया है।'—अलका बोली

विदुषने अलका की बात का समर्थन किया और कहा-'निष्पक्ष अध्ययन यही सिद्ध करता है। आज तो बहुत समय हो गया। चलो अब अलका।'और दोनों ही अपने अपने कार्यमें व्यस्त हो जाते हैं।



हिन्दू-पुराणों और बौद्ध-ग्रंथोंमें भ० ऋषभदेव

बर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त भगवान् परमर्षिभिःप्रसादितो नाभेः प्रिय चिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान् दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानाम् ऋषीणाम् ऊर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तन्वावततार । अयमवतारो रजसोपप्लुत-कैवल्योपशिक्षणार्थम् ।'

—भागवत् पुराण, स्कंध ५

अलकाने स्वाध्याय कक्षमें आते ही विबुधसे कहा कि वह उसे 'हिन्दू पुराण एवं अन्य जैनेतर ग्रंथोमे जो भ० ऋषभका उल्लेख हुआ है उसे बतावें । इस पर विबुधने पहले ही 'भागवत् पुराण' का उपरोक्त वाक्य सुनाया, जिसका अर्थ होता है कि 'यज्ञमे परम ऋषियो द्वारा प्रसन्न किए जाने पर हे विष्णुदत्त परीक्षित् स्वयं श्री भगवान (विष्णु) महाराज नाभिका प्रिय करने के लिए उनके रनिवासमें महारानी मेरुदेवीके गर्भमे आए । उन्होने इस पवित्र शरीर का अवतार वातरशना श्रमण ऋषियोके धर्मोको प्रकट करने की इच्छासे ग्रहण किया । भगवान का यह अवतार रजोगुणसे भरे हुए लोगो को कैवल्यकी शिक्षा देने के लिए हुआ था ।' विबुध से यह अर्थ सुनकर अलकाने पूछा कि 'वातरशना श्रमण ऋषियोसे क्या अभिप्राय है ?'

विबुधने उत्तर दिया कि 'वातरशना' शब्दका अर्थ 'वायुके वस्त्र' होता है । अतः वातरशना श्रमणोसे अभिप्राय उन दिगम्बर मुनियो का होता है जिनके वस्त्र मात्र वायु ही थे अर्थात् वे नगे रहते थे । 'ऋग्वेद' (१०।१३६।२-३)में भी इन मुनियोका उल्लेख मिलता

है। डॉ० वेबर ने इन का अर्थ दिगम्बर जैन मुनि ही किया है। आदिभगवान् ऋषभ स्वय दिगम्बर मुनि हुये और उन्होने दिगम्बर मुनि धर्म का उपदेश दिया था-यह बात इस उल्लेखसे भी स्पष्ट है।'

यह एक बड़े मार्के का उल्लेख है।—अलका बोली।

'हा, इसमे सन्देह नही!'—विबुधने उसकी बातको महत्व देकर कहा—'भागवत में भ० ऋषभका चरित्र प्राय. जैन पुराणो के अनुरूप दिया है। अत विद्वानोने इस सामञ्जस्यको महत्वपूर्ण बताया है[२]। 'विष्णु पुराण' (२।१) मे भी भ० ऋषभका उल्लेख एक महान् तपस्वी के रूपमे किया गया है। इसमे भी ऋषभ को राजा नाभि और रानी मरुदेवीका पुत्र लिखा है, जिनके भरतादि सौ पुत्र हुये थे। सुखसमता से राज्य भोगकर ऋषभने भरत को राज्य दिया और स्वय वनवासी हो गए। उन्हो ने घोर तपश्चरण किया कि जिस से वह मात्र हाड़-पिंजर के ढाचा ही बन गये। नगे दिगम्बर रहकर वह 'महामार्ग' (महाध्वानम्) के अनुगामी हुये।'

'मार्कण्डेयपुराण' (अ० ५० पृ १५०) में लिखा है कि 'अग्नीध के पुत्र नाभि हुये और नाभि के पुत्र ऋषभदेव थे, जिनके भरतादि एकसौ पुत्र जन्मे थे। हिमवान्‌के दक्षिण प्रदेशका राज्य उन्होने भरत को दिया, जिन के कारण यह देश भारतवर्ष कहलाया[३]।' यही बात 'कूर्मपुराण' (अ० ४१ श्लो० ३६-३८) मे कही गई है। 'शिवपुराण'

---

1 "The Digambaras appear to be the more ancient, for not only in the '*Rik Samhita* (X. 136 2) is mention made of '*Wind girdled Bachcbantes*' (Munayovātvasanās), but they also appear to be referred to in the well-known accounts of the Indian '*Gyrenosophnists*' of the time of Alexander the Great" —Indian Antiquary, 1901, Vol XXX

२ डॉ० स्टीवेन्सन की भूमिका 'कल्पसूत्र' को देखिए।

३. 'ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीर पुत्र शताद्वर

सोऽभिषिच्यर्षभ. पुत्र महाप्राव्राज्यमास्थित.।

तपस्तेपे महाभाग. पुलहाश्रम नश्रय

हिमाह्वय दक्षिण वर्षं भरताय पिता ददौ।

तस्मात्तु भारतवर्षं तस्य नाम्ना महात्मन'

—मार्कण्डेय पुराण ५०।३९-४१

(अ०५२) 'अग्निपुराण' (अ० १०), 'लिङ्ग पुराण' (अ० ४७) 'ब्रह्माण्डपुराण' (अ० १४) 'स्कन्द-पुराण' (अ०३७)' 'वाराह-पुराण' (अ० ७४) एव 'वायु महापुराण' (पूर्वार्द्ध अ० ३२) में भी इसी बात को दुहराया गया है। 'प्रभासपुराण' में स्पष्ट लिखा है कि 'विपुल और रम्य कैलाश पर वृषभ नामक जिनेश्वर हुए।'[१]

अरे' हिन्दू पुराणो' मे तो ऋषभदेव का उल्लेख विस्तृत रूपमे है और उनको जिनेश्वर भी कहा है। पहलेके भारतीय कितने उदार और प्रेमालु थे।'—अलका ने आश्चर्य से कहा।

विबुध बोला—'पुराणो के साथ २ 'मनुस्मृति और 'महाभारत[३]' मे भी उनका उल्लेख है।'

'जब ऋषभ अवतार ही मान लिये गये तब उनका वर्णन प्रत्येक ग्रन्थ में मिलना ही चाहिये।'-अलका ने तर्क किया।

विबुधने उसका समर्थन करते हुये कहा—'निस्सन्देह आदिकाल में ऋषभ भगवान् एक सर्वमान्य देव माने और पूजे गये थे। यही कारण है कि आज भी भारत की प्रत्येक सम्प्रदाय में वह एक महा पुरुष कहे जा रहे हैं। जहाँ एक ओर ऋषभ जैनो के प्रथम तीर्थंकर हैं, वहाँ दूसरी ओर वह वैदिक हिन्दुओके आठवे अवतार हैं। बौद्धो ने उनको भारत के प्राचीनतम राजाओ और सिद्ध पुरुषों में गिना है और सिक्खोने उनका उल्लेख जैनधर्मके संस्थापक रूपमें किया है।'

'अच्छा, बौद्धो और सिक्खो ने भी उन का उल्लेख किया है। भइया, बताओ तो उन्होने ऋषभ भगवान् के लिये क्या लिखा है?'-अलका ने पूछा।

उत्तर में विबुध ने बताया कि 'प्रसिद्ध बौद्धग्रन्थ 'धम्मपद' मे ऋषभ और वीर (उसभं वीर) का नामोल्लेख हुआ है। 'आर्य

---

१. कैलाशे विपुले रम्ये वृषभोऽय जिनेश्वर।'

२ 'मरुदेवी नामश्च् भरते कुल सत्तामा,
अष्टमो मरुदेव्यातु नमिर्जात उरुक्रम।
दर्शज्वर्मं वीराणा सुरासुर नमस्कृत,
नीतिविरम्य भर्तायो युगादी प्रथमो जिनः।'

—मनुस्मृति,

१ अनुशासनपर्व.

'मञ्जु श्री मूलकल्प' में भारतवर्ष के प्राचीनतम सम्राटों में नाभि पुत्र ऋषभ और ऋषभपुत्र भरत को गिना है। उस में लिखा है कि ऋषभ भगवान ने हिमालय से सिद्धि प्राप्त की थी और उन का यक्ष मणिचर था। वह निर्ग्रन्थ तीर्थङ्कर जैनोंके आप्तदेव थेः यथा:-

"प्रजापतेःसुतो नाभि तस्यापि आगमुच्यति।
नाभिनो ऋषभ पुत्रो वै सिद्धकर्म दृढव्रतः ॥३६०॥
तस्यापि मणिचरो यक्षः सिद्धो हैमवेत गिरो।
ऋषभस्य भरतः पुत्रः सोऽपि मञ्जतान तदा जपेत् ॥ ३६१॥

\+ \+ \+

"निर्ग्रन्थ तीर्थङ्कर ऋषभ निर्ग्रन्थ रूपि।"

'न्यायविन्दु' (३।१३१) नामक ग्रन्थ मे धर्म कीर्ति ने ऋषभ और वर्द्धमानकी सर्वज्ञताका उल्लेख निम्नलिखित शब्दोमे किया है.-

"यः सर्वज्ञः आप्तो वा स ज्योतिर्ज्ञानादिकमुपदिष्टवान्। तद्यथा ऋषभवर्धमानदिरिति।"

'इसीप्रकार अलका, सिक्खोके गुरू श्री गोविन्दसिंह जी महाराज ने भी अपने 'ग्रन्थसाहिब' मे लिखा है कि:—

'विशुणदेव अज्ञा जब पाई, काल पुर्ख की करी बडाई।५।
काल पुर्ख तब हुय दियाला, दास जान के वचन रसाला।६।
धर अर्हनदेव का रूपा, नाश करो अशरण के भूपा।१०।
तब अर्हन्नदेव बन आओ, आन और ही पन्थ चलायो १८।
श्रावकमत उपारजन किया, सन्त सनोहण को सुख दिया।६।

—दसमग्रंथ साहब, पृ० १७५

देखा,अलका सभी भारतीय धर्मोंमे ऋषभदेवको आदर दिया गया है। निस्स देह वह भारतके आदि महापुरुष और योगधर्ममय वीताराग विज्ञानता के प्रचारक थे। जैनो, बौद्धो और ब्राह्मणो द्वारा वे वेदो से भी प्राचीन योगी कहे गये हैं। डॉ० राधाकृष्णन् ने लिखा है कि वृषभ,अजित आदि तीर्थंकरोका उल्लेख वेदो में हुआ है। डॉ० ए० पी० कारमारकर भ० ऋषभ को प्राग्ऐतिहासिककाल का एक अद्वितीय योगी घोषित करते हैं। उन्होने लिखा है कि "ऐसे योगियों का पता वैदिक साहित्यमें उपनिषदो के प्रारभिक काल से पहले नहीं

लगता—इसकाल में वैदिक आर्यों ने उन को अपना लिया। और आश्रमों में चौथे सन्यासाश्रम को भी जोड़ लिया। यह सब कुछ व्रात्योंसे लिया गया। 'पंचविंश ब्राह्मण' में व्रात्योंके दो भेद राजन्य और अर्हत् किये गये है। व्रात्यों के अर्हत् जैनों एवं बौद्धों के भी अर्हत् हुये। ऋषभ जैसो महान् व्यक्तिया प्रेरणा के सुदृढ स्रोत बने—वह व्रात्यों में परमहंस योगी थे और जैनधर्म के संस्थापकों के लिये भी प्रेरणा के आधार बने।"

"किन्तु व्रात्य तो जैनोंका ही पुराना नाम है?"-अलकाने पूछा।

'विद्वानो का मत ऐसा ही है'—विबुध ने कहा—'व्रात्य ही जैनी है'- यह मत निराधार नही है, जैसे कि पहले तुम्हें समझाया गया है। दक्षिण भारतके प्राचीन साहित्य में भी भ० ऋषभ का उल्लेख है। तमिल—वेद 'कुरल'मे लिखा है:—

'अहर मुधल येजहू थेल्लां आदि,
भगवन् मुधत्रे उलहु।'

अर्थात्—'सभी स्वर—व्यंजन जैसे 'अ' अक्षर पर आधारित हैं, वैसे ही सारा संसार प्रथम (योगी) आदि भगवान् पर आधारित है!'

'चिरुकलम्बकम्' में ऋषभ के प्रसंग में लिखा है:—

'आदि भगवने अरगनें
मानुवर निम्वा कलुत्तु धन् पलवे।'

अर्थात्—'हम सब को मिलकर सदा ही भ० ऋषभ का गुणानुवाद गाना चाहिये, जो अर्हन् है और हमारे असह्य दुख को दूर करते हैं।

इसी प्रकार कन्नड साहित्य में भी भ० ऋषभ का उल्लेख किया गया है। आदि कवि पम्प, केशिराज, नागवर्म, साल्व आदि अनेक कवियों ने उनका स्मरण करके अपनेको धन्य माना है।

मथुना श्री जय भगवान जी वकील ने भी उन का यश गान निम्नलिखित रूप में किया है यथा:—

आदि प्रजापति अग्र प्रथम तू,
अग्रि अग्नि तू जातवेद तू,
पुरुषोत्तम नारायण, नर तू।
असुर महत् असुरीश असुर तू ।।'
ऋषभ वृषभ नन्दीश-अनड्वान्,
पशुपति गोपति गौर गॉड तू।
इन्द्र शक्र शुचिपावन है तू।
हिरण्यगर्भ, वैश्वानर है तू।' इत्यादि

'यह तो 'सहस्रनाम'-सा हो गया !'- अलका बोली।

'हा, सहस्रनाम से अधिक महत्वपूर्ण, क्योकि-इसमे जो नाम गिनाये है उन का शास्त्रीय आधार भी बताया है। 'अहिसा-वाणी' के 'भ० ऋषभ विशेषाक' में पढ़िये।'

यह कहते हुये विबुधने उसदिन की चरचा समाप्त की।



भ० ऋषभ भारतीय पुरातत्व में।

"सिद्धम्''' उसभ प्रतिमा वर्मये घीतु(गुल्हा) ये जयदासस्य कुटुंबिनिये दान।" (सिद्धं। गुल्हाने जो कि वर्मा की पुत्री और जयदास की पत्नी थी एक ऋषभदेव की प्रतिमा समर्पित की)

"पसकस्य कुटुम्बिनीये दत्ताये-दानधर्मो महाभोगयताय प्रीयताम्भगव नृषभ श्रीः॥"

"पसक की पत्नी दताने महाभोगता (महासुख) के लिए यह दानधर्म किया। भ० ऋषभदेव प्रसन्न होवें।"

—कंकाली टीला से प्राप्त शिलालेख (कुषाणकाल)

दूसरे दिन जब विबुधने ऋषभ भगवानके पावन चरित्र पर प्रकाश डाला तो उन्होने सबसे पहले अलकासे कहा कि 'सर्व्वसत्वानं हितसुखायान्तु'–'सबही जीवोके हित और सुखके लिये' भ० ऋषभ की मूर्तियां आदिकालसे बनती आई है। भारतीय पुरातत्वसे भी यह सिद्ध है कि वह प्राचीनकालमें भारतवासी ऋषभदेव की पूजा करते और उनकी मूर्तिया बनाते थे। श्वे० जैनो के 'ज्ञाता सूत्र' (११६) में जिन प्रतिमाओ का उल्लेख है। जैन मान्यता है कि स्वय सम्राट् भरतने अयोध्या एव कैलाशपर्वत पर भ० ऋषभ एवं अन्य तीर्थङ्करो की मूर्तिया निर्मित कराई थी, किन्तु आज उन मूर्तियो का पता लगाना कठिन है।'

'यह तो है हो!'-अलकाने टोका

विबुध बोला–'तो भी भारतके प्राचीनतम पुरातत्वसे भ० ऋषभ का अस्तित्व सिद्ध होता ही है। 'मोहनजोदड़ो'की मुद्राओ पर अङ्कित

योगियो की आकृतियाँ बिल्कुल दिगम्बर जैन कायोत्सर्ग मुद्रा की ऋषभ मूर्तियो के अनुरूप हैं। इसीलिए श्री रामप्रसाद चन्दा ने उनको ऋषभ मूर्तिका पूर्व-रूप कहा है। मोइनजोदड़ो की एक मुद्रा पर ऐसा दृश्य अङ्कित है जिससे भासता है कि सम्राट् भरत भ० ऋषभकी विनय कर रहे हैं, क्योकि उस पर बैलका चिन्ह बना हुआ है और जैनोके चैत्य वृक्षकी तरह नगे देवता वृक्ष वेष्टितसे अङ्कित हैं। भरत महाराजा के साथ अमात्य भी है। इसी प्रकार एक अन्य मुद्रा मे छै योगी अङ्कित है,जो ऋषभ देव और उनके साथी छै योगी प्रतीत होते है। हड़प्पा से प्राप्त नग्न मूर्तिकी तुलना लुहानीपुर (पटना) से प्राप्त मौर्य एव सुङ्ग कालीन जिन मूर्तियो से करके डॉ० जायस-वाल ने उनका साम्य दर्शाया था और अब पुरातत्व विभागाध्यक्ष श्री टी० रामचन्द्रन् उसे जिनमूर्ति ही मानते हैं।'

'इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ऋषभदेवकी मूर्तिया पाच या छै: हजार वर्षों पहले बनने लगी थी।'—अलका ने कहा

'बिल्कुल यही बात है क्योकि जैन ग्रन्थो में मूर्तियो का उल्लेख पुराने जमाने से होता आया है।' विबुध ने बात का स्पष्टीकरण करते हुये आगे बताया—'यदि हम देखे तो पायें कि उड़ीसा के प्रसिद्ध खडगिरि उदयगिरि नामक जैन तीर्थकी हाथीगुफामें कलिङ्ग चक्रवर्ती जैन सम्राट खारवेल का ई० पूर्व द्वितीय शताब्दि का शिलालेख अङ्कित है। इस शिलालेख की १२ वी पक्ति में लिखा है कि कलिङ्गके अग्रजिन(ऋषभ)की मूर्तिको नन्दराज मगध ले गये थे। खारवेल ने जब यह सुना तो वह कलिङ्ग–राष्ट्र की उस अपूर्व निधि को वापस कलिङ्ग लाने के लिये छटपटा उठे। मगध को जीतकर वह उस दिव्य मूर्ति को कलिङ्ग वापस लाये और बड़े उत्साह से उसका उत्सव मनाया!'

'बड़े धर्मात्मा थे खारवेल!'—अलका बोली!

'धर्मवीर तो वह थे ही, किन्तु अलका, एक बात, सोचो'-विबुध कहता गया कि 'जिस ऋषभ मूर्ति को नन्दवश का वह राजा मगध ले गया था वह मूर्ति नई नहीं थी, बल्कि कलिङ्ग राष्ट्र की वह पुरातन निधि थी। अतः इस उल्लेख से स्पष्ट है कि ऋषभदेव की

मूर्तियां नन्द काल से भी बहुत पहले बनने लगी थीं।

'हाथीगुफा के शिलालेखीय उल्लेख से तो यही सिद्ध होता है।'-अलका ने बताया।

विबुध बोला—'हां, यही तो मैं बता रहा हूँ। अब ज़रा ककालीटीला मे प्राप्त भ० ऋषभ की मूर्तियो को देखो। मथुरा मे भ० सुपार्श्व का एक स्वर्ण स्तूप बना हुआ था, जिसका पुनर्निर्माण तीर्थंकर पार्श्वनाथ के समय मे मौर्यकाल की यक्षकला से पहले की देवनिर्मिति कला की शैली से किया गया था। उस पर भी भ० ऋषभ की मूर्ति बनी हुई थी। 'बौद्ध स्तूप' वाले शिलालेख से यही ध्वनित होता है।'

'इस उल्लेख मे तो तीर्थङ्करो का अस्तित्व भ० पार्श्वनाथ के समय (ई० पू० नवी श०) तक पहुच जाता है।'—अलका ने अपनी सूझको दौडाकर कहा!

'निस्सन्देह!'—विबुध ने कहा और बताया कि 'ककालीटीला मथुरा मे बडे पुराने सुन्दर जिन मन्दिर थे, जो मुसलमानो ने तोड-फोड डाले थे। उनकी बचीखुची तीर्थंकर मूर्तियो में भ० ऋषभ की भी कई मूर्तियाँ हैं जो कुषाणकाल की हैं और उन पर उन का नाम लिखा है।'

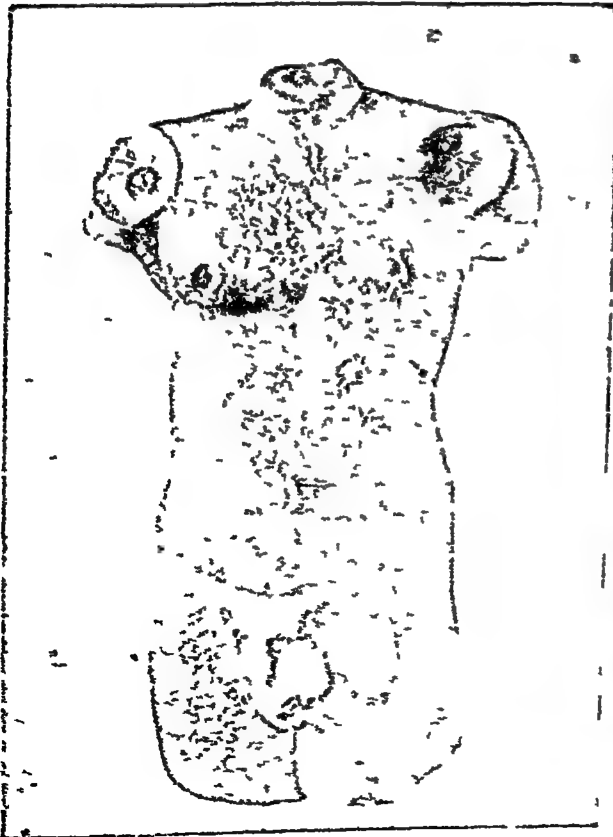
'साम्प्रदायिक कट्टरताने मानवका बड़ा अहित किया है। कभी २ इस नये युग के पढे लिखे लोग भी उस के जहर से अछूते नही मिलते!'—अलका ने गहरी सांस लेकर कहा!

विबुध भी कुछ मर्माहत हो चुप रह गया। फिर वह बोला—'अज्ञानमें फंसा मनुष्य जो न कर दे वह थोडा है। किन्तु मंदिर और मूर्तियोंके तोडनेसे धर्म मिटता नही क्योंकि धर्म आत्माकी चीज़ है। ध्वस्त मंदिर और मूर्तियां भी धर्म की यशगाथा मूकवाणी में गाते हैं। गुजरात में ढाक नामक स्थान में पुरानी गुफायें हैं उन में भी ऋषभकी मूर्ति मिलती है। भ० महावीरसे पहले हुये करकंडु नामक राजाने तेरापुर (धाराशिव) की गुफाओं में अनेक तीर्थंकरो की मूर्तियां निर्मित कराई थी!

'बड़वानी में बावनगजा आदिनाथ प्रभु की मूर्ति भी तो अति



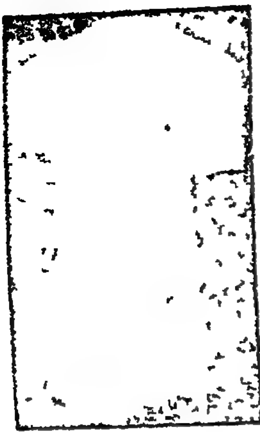
सिन्धु घाटी की एक मुद्रा जिसमें दिगम्बर देव मये वृषचिह्न के हैं। एक पूजक पूजा कर रहा और सात सेवक खड़े हैं । वे ऋषभ और भरत प्रतीत होते हैं।



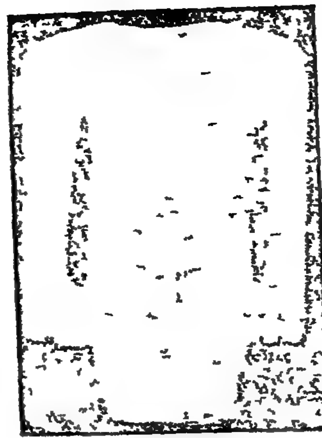
हरप्पासे प्राप्त दिगम्बर मूर्ति का धड़



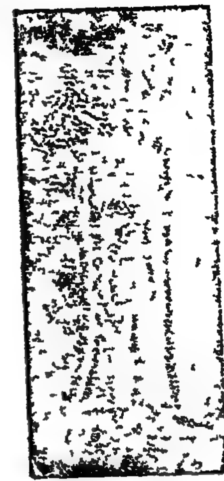
भ० ऋषभ की धातु प्रतिमा (चौसा से प्राप्त पटना संग्रहालय)



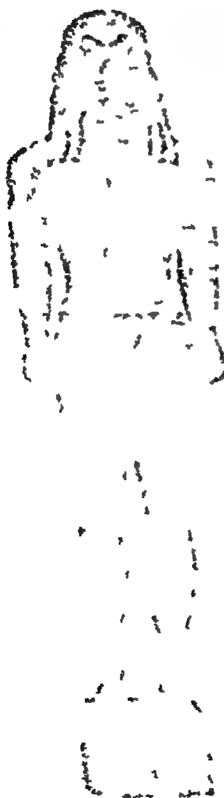
ोहानीपुर (पटना) े प्राप्त शुङ्गकालीन ैन मूर्ति का धड़



लोहानीपुर (पटना) से प्राप्त मौर्यकालीन जैन मूर्ति का धड़



सिंधु घाटी की मुद्रा पर दिगम्बर योगी की आकृति, जो कयोत्सर्ग मुद्रा और त्रिशूल-शिर बिन्यास सहित हैं। इसकी समता ऋषभमूर्ति से है।



ी से प्राप्त प्राचीन आर्गिव मूर्ति बिल्कुल जैन मूर्ति के समान है।
[illegible])



(दाएँ)

मूर्ति अपोलो रेगक जो यूनान मे है।

विशाल औरप्राचीन है। कहते हैं, उसकी पूजा रावणने की थी !'—अलका ने भी पते की बात कही, जिसे सुनकर विवुध मुस्कराया और बोला—'हा, ठीक याद दिलाई। ऋषभपुत्र बाहुबलि की एक विशालकाय मूर्ति पोदनपुरमे थी। कालदोषसे जब वह लुप्त होगई तो श्रवणवेलगोल (मैसूर)के इन्द्रगिरि पर्वत पर गग-सेनापति चामुण्डराय ने ई० नवो शताब्दिमे बड़ी ही मनमोहक मूर्ति निर्मित कराई। ५७ फीट ऊंची एक ही शिलाखडकी यह मूर्ति सारी ऐशिया मे एक ही है और विश्वका एक छोटा आश्चर्य है अलका, किंतु इससे भी विशाल और आश्चर्यमय प्रतिमा ऋषभ भगवान की कभी लवण समुद्रके किनारे खडी हुई थी। उसका चमत्कार यह था कि लवण समुद्रमे जहा तक उसकी छाया पड़ती उतना पानी मीठा हो जाता था। इसका उल्लेख 'शासनचतुस्त्रिंशिका'मे है। ये मूर्तिया और शिलालेख आदि तीर्थङ्कर ऋषभके अस्तित्व और उनकी मान्यताको प्रमाणित करते हैं!'

'इतने पर भी इतिहास लेखक उनके विषयमे मौन रहते हैं, यह आश्चर्य है!—अलका ने कहा!'

'सभव है कि अब आदि भगवानके जीवन चरित्रकी महत्ताको समझ कर हमारे इतिहास लेखक अपनी भूलको पहिचान लेगे।'-विवुध ने आशा प्रगट की और दोनो ही स्वाध्याय-कक्षके बाहर चले गये!



विदेशों में भ० ऋषभ की मान्यता।

"बौद्धों के त्रिपिटक का चीनी भाषामें जो संस्करण उपलब्ध है, उसमें यत्रतत्र जैनों के प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव विषयक उल्लेख मिलते हैं। भ० ऋषभके व्यक्तित्वसे जापानी भी अपरिचित नहीं–जापानी उन्हें "रोकशव" (Rok'shab) नामसे पुकारते है।"

—प्रो० डॉ० हाजिमे नाकामुरा

अगले दिन फिर जब विबुध स्वाध्याय-कक्षमें पहुंचा, तो उसने अलका से पूंछा-'भला बताओ, अलका भ० ऋषभ विश्वगुरू कैसे थे और उनका धर्म विश्वधर्म क्यो कहलाया ?' अलकाने कुछ सोचा और फिर उत्तर दिया-' भ० ऋषभ इसलिए ही विश्वगुरु थे कि उन्होने मानव मात्रको श्रम करना, नये नये अविष्कारो को सिरजना खेती करना आदि अनेक लौकिक कर्म बताये थे' जिनसे मनुष्य सभ्य और सुसंस्कृत बना। साथ ही उन्होने आध्यात्मिकयोगकी शिक्षा देकर मनुष्य को अहिंसा धर्मका पाठ पढाया। अत उनको विश्वगुरू कहना ठीक था और चूंकि उनका अहिंसा धर्म जीव मात्रको सुख शांति प्रदान करता है, इसीलिए वह प्रगट विश्वधर्म है।'

अलका का तर्क पूर्ण उत्तर सुनकर विबुध प्रसन्न तो हुआ, किंतु उसने अलकासे फिर पूछा–'तथ्यपूर्ण तर्क के बल पर, अलका, तुमने भ०ऋषभका विराट् विश्वरूप सार्थक सिद्ध तो किया, परंतु विश्वके सभी लोगोने उनको विश्वगुरु और अपना आराध्य माना हो तभी उसकी विशेषता है।'

'भारतीय शास्त्र और मुख्यत. जैनशास्त्र तो यही कहते हैं कि भ० ऋषभदेवने सारे आर्य देशोमें विहार और प्रचार किया था। अतः उनकी मान्यता भारत तक ही सीमित रही हो, ऐसी बात तो सभव नही दिखती।'—अलका ने गहरे विश्वासके साथ कहा!

विवुध अलका की भक्ति श्रद्धाको देखकर मुस्करा रहा था और मुख्यतः इसलिए कि उसकी श्रद्धा तर्क, प्रमाण और विवेकसे परिमार्जित थी। उसने कहा,'अलका, तुम कहती तो ठीक हो परतु फिर भी आओ हम-तुम उन के विश्व-विराट्रूप पर और विचार करलें। भ० ऋषभके ज्ञानमे सारा ही विश्व झलका था—विश्वका कोई कण उनके ज्ञानसे अछूता न बचा था। अतःकहना होगा कि सारा विश्व उनके ज्ञानसे प्रभावित हुआ था।'

'यही कारण है कि शास्त्रो मे भारतेतर देशोमें भी भ० ऋषभ की मान्यता के उल्लेख मिलते है।'—अलका बोली।

विवुध ने कहा— 'शास्त्रो में तो ऐसे बहुतेरे उल्लेख भरे पड़े हैं; किन्तु उन के स्थान पर यहा ऐतिहासिक तथ्यो के आधार पर विचार करना श्रेष्ठ है।'

'हा—हां, यह विल्कुल ठीक है।'—अलका ने कहा!

इस पर विवुध कहने लगा—'आओ सब से पहले पूर्व के देशो की ओर दृष्टिपात करें! तिब्बत, ब्रह्मा, चीन, मलाया आदि देशो में भ० ऋषभ और उनके धर्मका परिचय पाने का प्रयास करें! तिब्बत भारतका पड़ोसी है और कैलास पर्वतकी छायामें स्थित है। इटली के प्रो० ज्योसेप टुश्शी (Prof Giussepe Tucci) को एक तीर्थंक-मूर्ति तिब्बत सेमिली थी, जिसे वह रोम ले गये थे। १८ वी शती में ब्र० लामचोदास जी ने अपनी यात्रामें इन देशोमें जैनधर्म के अस्तित्व का उल्लेख किया है।

'फूलमाल में चीन-महाचीन तकसे श्रावको के आने का उल्लेख आजभी मिलता है'—अलका ने विवुधकी बातको पुष्ट किया।

विवुध आगे बोला-'एक समय चारुदत्त आदि जैन व्यापारी इन देशो से व्यापार करने जाते थे और उन्हो ने वहा जिन मंदिर भी देखे थे। रत्नद्वीप, सुवर्णद्वीप, मलय द्वीप आदि का उल्लेख हुआ

मिलता है। सुवर्ण भूमि के अन्तर्गत बर्मा, मलयद्वीपकल्प, सुमात्रा और मलयद्वीप समूह के सभी द्वीप आ जाते हैं। भ० महावीर के बहुत पहलेसे इन देशो में जैनधर्म प्रचलित था, यह बात जैन शास्त्रो के उल्लेखो से स्पष्ट है।'

'किन्तु इन देशोमे जैनधर्म के चिन्हावशेष नही मिलते!'-अलका ने शङ्का की तो विबुध बोला—'पहले तो जैन पुरातत्व की खोज हुई ही नही है। अत सभव है कि प्राचीन चिन्ह मिल जावें। दूसरे ध्यान देने की चीज यह है कि जब भारत ने ही जैन चिन्हो को जैनेतर सम्प्रदायो ने हथिया लिया तो विदेशो में ऐसा होना बिल्कुल संभव है।'

'बिल्कुल सभव ? नहीं जी अब मुझे याद आया, ऐसा हुआ भी है। लका (सीलोन) का उदाहरण स्पष्ट है। वहां अनुराधापुरमें राज्यमान्य जैन विहार (मंदिर) पाच सौ वर्षों तक रहा, परन्तु राजवंश के बौद्ध होने पर वह नष्ट कर दिया गया—'महावश' में इसका उल्लेख है परन्तु उसके चिन्ह कही नही मिलते !'—अलका ने बात को स्पष्ट किया।

विबुध बोला—'यथार्थ रूप तो कुछ ऐसा ही दिखता है। बोरूबदर का विशाल मदिर जिसमें ५२ चैत्यालय हैं, हो सकता है कि मूल में जैन हो, क्योंकि जैनोंमें ही ५२ चैत्यालयोंकी विशेष मान्यता है। जो हो, इसमें सशय नही कि इन देशो के पुराने लोगो में भ० ऋषभ की मान्यता किसी न किसी रूप में थी—उनको वे किसी न किसी नाम से याद करते थे। चीनी भाषा के पिटकग्रंथ में प्रो० हाजिमे नाकामुरा ने 'महासत्य-निर्ग्रन्थपुत्र-व्याकरण-सूत्र' नामक एक जैन ग्रन्थ का पता लगाया है, जिसका चीनी भाषा में अनुवाद सन् ५१६ ई० में बोधिरुचि ने किया था। बौद्ध त्रिपिटक

चीनी लोगों के पुराने धर्म—विश्वास जैनधर्म के समान थे[1]!'—अलका ने बताया।

विबुध ने कहा—'निस्संदेह चीन में जैन धर्म का प्रभाव देखने को मिलता है। चीनी विद्वान भ० ऋषभसे अनभिज्ञ नही थे। प्रो० नाकामुराने बताया है कि चीनी भाषा के 'षट्शास्त्र' (अ०१) में ऋषभदेवको 'भगवत्' कहा गया है। उसमें यह भी लिखा है कि भ० ऋषभके शिष्यगण निर्ग्रन्थों (जैनो)के धर्मग्रन्थोंका पाठ करते हैं। इस प्रसंग मे श्री चि-त्सङ्ग (५४९-६३३ ई०) ने लिखा है कि 'ऋषभ एक तपस्वी ऋषि हैं। उन का उपदेश है कि हमारे शरीर को सुख और दुख भोगने पडते हैं जो पूर्व संचित कर्मों के फल होते हैं। तपस्या द्वारा कर्म निर्मूल करने पर निर्वाण मिलता है।' चि-त्सङ्ग ने 'स्वर्ण सप्ततिटीका' में ऋषभ द्वारा मान्य तर्कवाद का भी उल्लेख किया है[2]!'

'अरे, चीनी विद्वानो को तो भ० ऋषभ और उन के धर्म का पर्याप्त ज्ञान था! जब चीनवालो को था तो बीच के देश वालो अर्थात् बर्मा,मलय आदिके निवासी उससे अछूते कैसे रह सकते थे?'-अलका ने तर्क किया।

विबुध ने अलका के तर्क को सराहा और बताया कि 'ऐतिहासिक काल मे कालकाचार्य ने बर्मा जाकर प्रचार किया। उन के शिष्य सागर पहले से ही वहा जैनधर्मका प्रचार कर रहे थे। वह बर्मा से दक्षिण चीन तक अहिंसाधर्म का प्रचार करते हुये घूमे थे। अनाम—चम्पा के एक ग्रन्थ में डॉ० आर० सी० मजूमदार ने पढ़ा था कि 'पश्चिमी भारत से खऊद—ल नामक एक ब्राह्मण वहां गये थे। वहा से वह दरियाई रास्ते टोन्किन (दक्षिण चीन) पहुंचे थे। वह मन्त्रवाद मे निपुण थे। वह पेडो की छाया में और गुफाओ में निवास करते थे। उन्हें लोग कालाचार्य कहते थे।' डॉ० उमाकान्त शाह ने जैन कालकाचार्य को और उक्त कालाचार्य को अभिन्न माना है। वह सुमात्रा के निकट वंका नामक खाड़ी के

---

१ असहमतसगम (अंग्रेजी) पृ० २५२

२. अहिंसावाणी—तीर्थंकर भ० ऋषभदेव विशेषांक—वर्ष ७ पृ० १६-१७

प्रदेश में भी गये थे[1]।'

'इण्डिया पिक्चोरियल वीकली (कलकत्ता १८ जुलाई १९४८) में नानकिंग से २० मीलकी दूरी पर स्थित 'सहस्त्रबुद्ध' नाम की एक विशालमूर्ति का चित्र प्रकाशित हुआ था; वह मूर्ति बिल्कुल एक जिन प्रतिमा ही जंचती है'—अलका ने बताया !

'हो सकता है, मूल में वह जिनमूर्ति हो !' विबुध ने कहा और बात को बढाया कि 'जावा सुमात्रा, मलय आदि द्वीपसमूह में शैवो एव बौद्धोके साथ २ जैन भी थे, यह तथ्य डॉ० सिल्वांलेवी ने मान्य किया था[2]। कम्बोडिया मे जाकर जो भारतीय बसे थे उनके आदि पुरुष कौन्डिन्य थे। जैनाचार्य उग्रादित्यने बताया है कि आर्हत (जैन) वैद्यो में एक कौन्डिन्य नामक थे जो कभी भी मद्य और मांसमय औषधियोका प्रयोग करनेकी राय नही देते थे। दोनो के नाम और काल एक से हे। अतः संभव हे कि जैन कौन्डिन्य ही कम्बोडिका के प्रवासी भारतीयों के अग्रज हो।'

'सुना है कि इन द्वीपो के ये भारतीय प्रवासी पूर्ण शाकाहारी भी थे और वे तीर्थंकर मूर्ति से मिलती—जुलती मूर्तियां बनाते थे, जो नग्न और यज्ञोपवीतचिन्ह से रहित होती थी।'—अलका ने भी यह प्रकाश डाला।

विबुध बोला—'सो तो वहाँ के एक ९ वे शताब्दि के शिलालेख में तीर्थंकर पार्श्वनाथ का भी उल्लेख हुआहे और 'रामायण' एव 'महाभारत' के दृश्यो का भी चित्रण भिन्न रुप में हुआ है।'

'यही तो सब बातें हे जो जैन शास्त्रो की इस बात को पुष्ट करती हे कि पूर्व के द्वीपसमूह में जैनधर्म प्रचलित था और वे लोग भ० ऋषभ से परिचित थे।'—अलका ने बात को स्पष्ट कर दिया।

विबुध बोला-'पूर्व की तरह ही पश्चिमी ऐशिया—अरब-ईरान सिरिया एवं मिश्र और यूनान तक भ०ऋषभकी मान्यताका प्रचलन एक अत्यत प्राचीन काल से सिद्ध होता है। प्रो० आर० जी० हर्षे

---

१. डॉ० उमाकान्त शाह, सुवर्णभूमि में कालकाचार्य (बनारस) पृ० १-२६

२ विशाल भारत एव भ०वर्द्धमान महावीर पृ० २३०

३. हिन्दू मनगर इन ग्रेटर इन्डिया, पृ० १-१५९

ने अलासिया (साइप्रस) से प्राप्त ई० पूर्व १२ वी शती की रेशेफ (Reshef) मूर्ति पर गवेषणात्मक लेख लिखकर सिद्ध किया है कि रेशेफ भारतीय ऋषभका ही नाम है। फणिक लोगोकी भाषामें 'रेशेफ' का अर्थ होता है सीगोवालाशदेवता और सस्कृत मे ऋषभ अथवा वृषभ का अर्थ है बैल। उक्त मूर्ति के सीग बैलो जैसे हैं। इसीलिए रेशेफ और ऋषभ अभिन्न प्रगट होते हैं[1]। ऋषभ का चिन्ह भी बैल था। और फणिक लोग स्वयं जिनेन्द्रभक्त थे इससे स्पष्ट है कि पश्चिम एव मध्य ऐशिया के लोग ऋषभदेव को उन के बैल चिन्ह की अपेक्षा 'बैल देवता' (Bull-God) कहकर पूजते थे। उनकी मूर्तिया मनुष्याकार की बनाते थे, जो बहुधा नग्न ही होती थी और उसके कंधो पर उसी तरह बालो की लटें लहराती थी जैसी कि भ० ऋषभ की मूर्तियो मे होती हैं।'

'हा, हाँ, डॉ० कालीदास नाग ने मध्य ऐशिया से प्राप्त एक नग्न मूर्ति का चित्र अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी ऑव ऐशिया' में दिया है जो लगभग दस हजार वर्ष पुराना है और उसे उन्हो ने जैनमूर्ति के अनुरूप बताया है[2]। निस्सदेह वह भ० ऋषभ की मूर्ति है क्योकि वह कायोत्सर्ग मुद्रामें है और नग्न है। उसकी जटाये कधो पर ठीक वैसे ही लहराती हुई दर्शाई गई हैं जैसे कि जिन मूर्तियो में होती हैं।'—अलका ने उत्साह से बताया।

विबुध बोला—'यूनान में भी अपोलो की मूर्ति नग्न बनती थी और अपोलो सूर्य देवता हैं जो अपोलो—रेशेफ भी कहलाते थे। भ० ऋषभ केवलज्ञानी थे, इस कारण ज्ञान सूर्य कहे जाते थे। निस्सदेह मध्य ऐशिया से यूनान तक ऋषभदेव की मान्यता एक समय फैल रही थी। उनकी मान्यता के दो रूप मिलते हैः(१) लौकिक, जिस मे ऋषभ एक प्रजापति शासकके रूप मे मान्य रहे और (२) धार्मिक, जिस मे ऋषभ सर्वज्ञ तीर्थङ्कर अथवा आराध्यदेव के रूपमें पूजे गये। इन त्रिदेशों मे भ० ऋषभदेव 'रेशेफ' (Reshef), 'तेशेव'

---

1. Bulletin of the Deccan College Research Institute vol. XIV No. 3-pp.229-236

२ डिस्कवरी ऑव ऐशिया, प्लेट नं० ५

(Tesheb), 'अपोलो' (सूर्यदेव) आदि नामो से प्रख्यात् थे[1]।'

'इसका अर्थ यह है कि ऋषभ भगवान् की मान्यता सर्वत्र व्याप्त थी'—अलका ने कहा !

'हां' यह तो था ही' भ० ऋषभ का पवित्र नाम उन देशों के घर-घर मे फैल गया था. लोगो ने उन के नाम से नगर और ग्राम बसाये। 'बाइबिल' में ईसा के पूर्वजो में एक का नाम बूज (Booz) था, जो रचव (ऋषभ ?) के निवासी थे[2]।'—विवुध ने बताया।

यह सुनकर अलकाको आश्चर्य हुआ और उसने पूंछा कि 'यह नाम साम्य तो है ही, परन्तु ऐसे और भी तो नाम होगे ?'

विवुध ने उत्तर दिया—'हां, ऐसे नाम और भी हैं। सीरिया (Syria) के अमुर्र (Amurru) नामक देश में एक नगर का नाम 'रेशेफ' था: जिसका उल्लेख मरिंजातीय नरेश ज़िम्रे लिन (१७३०-१७०० ई० पूर्व) के लेखमें हुआ है। सोवियत अरमेनियाके करीमर-ब्लूर (लालपर्वत) के तेशेबनी नामक प्राचीन उरतियन नगर के अस्तित्व का भी पता चलता है। बेबीलोनिया का 'इसवेजूर' नगर ऋषभपुर का अपभ्रष्ट रूप प्रतीत होता है, जहा तेशेव (ऋषभ) देव की मूर्ति भी विद्यमान रही[3]। प्राचीन काल में तेशेव अथवा तेशब (Teshub) रूपमें भ० ऋषभकी मान्यता मध्यएशियासे लेकर सोवियत अरमेनिया तक फैली हुई थी। मलातिया, बोगज़केऊई, जिन्ने-रली, इसबेकजूर आदि स्थानों में तेशवदेव (ऋषभदेव) की मूर्तिया विद्यमान थीं[4], जो उन के लौकिक उपकार को लक्ष्यकर के एक सम्राट के रूपमें बनाई गई थी। तेशव का वाहन भी भ० ऋषभ के चिन्ह की तरह बैल है और अस्त्र त्रिसूल है। उनके साथ उनकी देवी सिंहवाहिनी बनाई गई है। अर्हंत भगवान् ऋषभ भी रत्नत्रय-

---

१. 'अहिंसावाणी' का तीर्थंकर त्रय-भ० मल्लि मुनिसुव्रत व नमि विशेषाक (१९५८) मे हमारा लेख देखिये (पृ० २५०-२५४)

२. सेंट मैथ्यू १।५

३. अहिंसावाणी का तीर्थंकर-त्रय विशेषाक (१९५८) देखिये,

४. इन्साइक्लोपीडिया ऑव रिलीजन एंड ईथिक्स, भा० पृ० ७२४

रूपी त्रिसूल के धारी कहे गये हैं[१]। 'तेशब' शब्द 'तित्थयर-उसभ' अथवा 'थेर-उसभ' का अपभ्रष्ट रूप हो सकता हैं। और यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल मे काश्यपो, देवों, मानवो, मिश्रवासियो और मयों मे एक ही प्रकार की चित्रमय-भाषा-लिपि(Hierolgyphic Script) प्रचलित थी तथा एक अलकृत भाषाका भी प्रयोग होता था[२]।

'अरे, यह बात है तो निस्सदेह तेशब शब्द भ० ऋषभ का ही, द्योतक है, क्योकि वह व्यक्तिवाचक (Proper) नाम हैं।' अलका ने कहा।

'हां, यही संभव दिखता है।' विबुध ने कहा और बताया कि इस अनुमान की पुष्टि इस तथ्य से और होती है कि प्राचीन काल में जैन तीर्थंकरो के शिष्यगण जो स्थविर (थेर) कहे जाते थे, वे दूर-दूर देशो तक विहार करते थे। अपने साधुनियमों के पालन में कठिनाई अनुभव करने के कारण जिन दूर देशो में वे नही पहुच पाते थे, उनमें ये थेर (प्राचीन साधु) अपने ब्रह्मचारी शिष्यो को भेज देते थे जो 'थेरपुत्त' कहलाते थे। ऐसे 'थेरपुत्त' बौद्धो में भी थे। उड़िया विद्वान् श्रीनीलकठ दास ने लिखा है कि 'ईसा से पूर्व दूसरी तीसरी सदियोमें इन थेरपुत्तो के मिश्रमें होने का प्रमाण है। यत्रतत्र पहुंचकर रोगियोकी सेवा करना उनका मुख्य काम था। अंग्रेजी शब्द Therapeutics का अर्थ होता है भेषज विद्या। यह थेरापिउटिक्स शब्द प्राचीन प्राकृत शब्द 'थेरपुत्तक' से बना है!'

'श्री नीलकठ दास जी का अभिमत प्रमाणसिद्ध भासता है, क्योकि जैनाचार्योमे अनेक महान् वैद्य थे और ब्रह्मचारी 'थेरपुत्त' अपनी वैयावृत्ति और सेवाधर्म करने के लिए प्रसिद्ध ही हे।' -अलका बोली

विबुधने प्रसन्नता पूर्वक कहा—'निस्संदेह श्री ऋषभ जिनेन्द्र सर्वोपरि वैद्य भी कहे गये हे। श्री पूज्यापाद, श्री कल्याण कीर्ति आदि अनेक जैनाचार्य सुप्रसिद्ध वैद्य थे। उसपर सोवियत अर्मेनियाके जिस तेशबनी नगर का उल्लेख पहले किया है, उसकी खुदाई में कई पुरानी चीजे मिलीं हे। उनसे स्पष्ट है कि इस नगरको रुसस (रुसह)

---

१. ति-रयण-तिसूल-धारिय -धवलाटीका

२. इण्डियन हिस्टोरीकल क्वार्टर्ली भा० ३ पृ० ३६

(ऋषभ) द्वि० नामक राजाने ई०पू०६८०-६४५में बसाया था। इन चीजो में तेशवकी एक मूर्ति और भारतीय ढगके राजमुकुट भी है, जिन पर पूजा का दृश्य अङ्कित है!'

'भरत महाराज ने भी तो अपने मुकट में भ० ऋषभ की मूर्ति अङ्कित कराई थी!'—अलका ने कहा।

'हा, उक्त मुकटोका साम्य भरत म० के मुकट से होना विशेष अर्थ रखता है।' विबुध ने बताया और वह आगे बोला—'तेशबनो के राजाओके नाम भी तो भारतीय भासते हैं! यथा रुसस(रुसह = ऋषभ), अगिश्तिस (= अर्घस्त = अर्हंत) और सादूंर (= शादूंल) इस से स्पष्ट है कि इन देशो में भ० ऋषभ की मान्यता थी। भूमध्यसागर परिवर्ती देशो में भी वृषभदेव की पूजा प्रचलित थी। वे लोग उनको 'बा)ल' (Ba'al) के नाम से पुकारते थे। फणिक लोगो में प्रचलित एक प्राचीन कविता रसशमरा नामक स्थान से मिली है,जो संभवत.प्रतीकवादकी शैली पर अलकृत भाषामें लिखी हुई है!'

'ऐसा होना बिल्कुल सभव है, क्योकि प्राचीनकालमें प्रतीकवाद (Symbolism) का प्रचार बहुत था।'—अलका ने विबुध के कथन को पुष्ट किया। विबुधने आगे उस कविता का निम्नलिखित भाव उपस्थित करके उसका रहस्यभरा अर्थ बताया.—

'बा)ल नगर-नगर घूमा, वह ग्राम-ग्राम डोला;
छ्यासठ नगर उस के हुए, सतत्तर ग्राम उसके हुए :
हां अस्सी थे बादल ..
बल्कि नब्बे थे बादल.... .. —

\+ + +

बादल ने बादलों को चीरा,
उसकी पवित्र वाणी चहुँ ओर फैली—
बादल ने कहा.. ....
उसकी गरजसे पृथ्वीकी सभी उपत्यकायें कांपी। इत्यादि'

'जानती हो अलका ऋषभदेव ने साधनाकाल में यत्रतत्र विहार किया था और साधनाका परिणाम भी उनके व्यक्तित्वमें प्रगट होता जाता था। कर्म की विविध कर्म प्रकृतियो को नष्ट करके ही ऋषभ पूर्ण ज्ञानी हुए थे और तब उन्हो ने नगर—नगर और ग्राम-ग्राम घूम

कर धर्मोपदेश दिया था। लगता है, ऋषभ की इस जीवन घटना का उल्लेख उक्त कविता मे है। ६६, ७७, ८० और ६० अधिकृत होने का अर्थ कर्म प्रकृतियो को जीतना हो सकता है। परिणामतः कर्मरूपी बादलो को ऋषभ ने चीर डाला था-वह सर्वज्ञ हुए और तब उनकी दिव्य ध्वनि—पवित्र वाणी—बादलो की गर्जन जैसी हुई थी और चारों ओर फैल गई थी। पापभारसे लदी हुई पृथ्वी कप गई। इस प्रकारका भाव उक्त कविता का लिया जाय तो उसका महत्व स्पष्ट होता है। साराशत यह स्पष्ट है कि प्राचीन कालमें भ० ऋषभ की मान्यता विश्व भर मे फैल रही थी!'

'वह मानवता के आदिगुरू जो थे। अतः उनकी मान्यता दूर-दूर के देशो मे होना ही चाहिये।'—अलका ने कहा

फिर दोनो ही इस चरचाको समाप्त कर के अपने २ काम में व्यस्त हो गए।



भ० ऋषभदेव और शिव जी की एकता।

"इत्थ प्रभाव ऋषभोऽवतार शंकरस्य मे।
सतां गति दीनबन्धुर्नवमःकथितस्तवनः॥४७॥"

—शिवपुराण

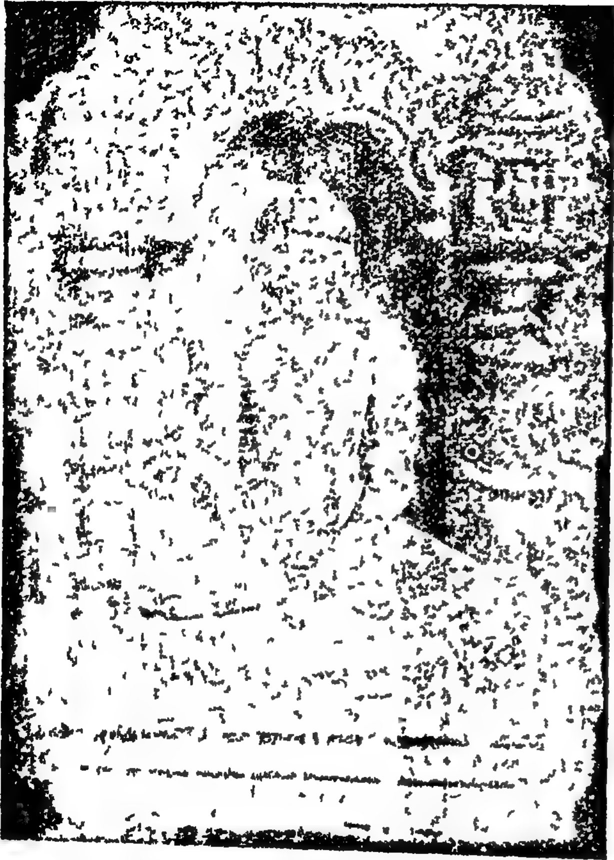
जब अगले दिन पुन. विवुध और अलका ने स्वाध्याय-कक्ष में चरचा प्रारभ की तो छूटते ही विवुध ने जो कहा उसे सुनकर अलका आश्चर्य में पड़ गई। उसने कौतूहल से पूंछा कि "भ० ऋषभदेव और शिव जी भ० एक कैसे हो कसते है?" विवुधने उत्तर में 'शिवपूराण' का उक्त श्लोक पढ कर कहा कि "हिन्दू पुराणो, जैन शास्त्रो और भारतोय पुरातत्व से यह सिद्ध होता है कि ऋषभ अथवा वृषभ ही प्रतीकवादी (Symbolic) क्षेत्र में भ० शिव माने गये है।" शिव पुराण" में लिखा है कि ऋषभावतार होगा, जो मेरे लिये शकर (शिव) है। वह ऋषभ सत्पुरुषोके लिये सत्यपथ, नवमें अवतार और दीनबंधु होगे।"

"इस मे तो भ० ऋषभ को स्पष्टतः शंकर-शिव का अवतार लिखा है।" अलका ने दुहराया।

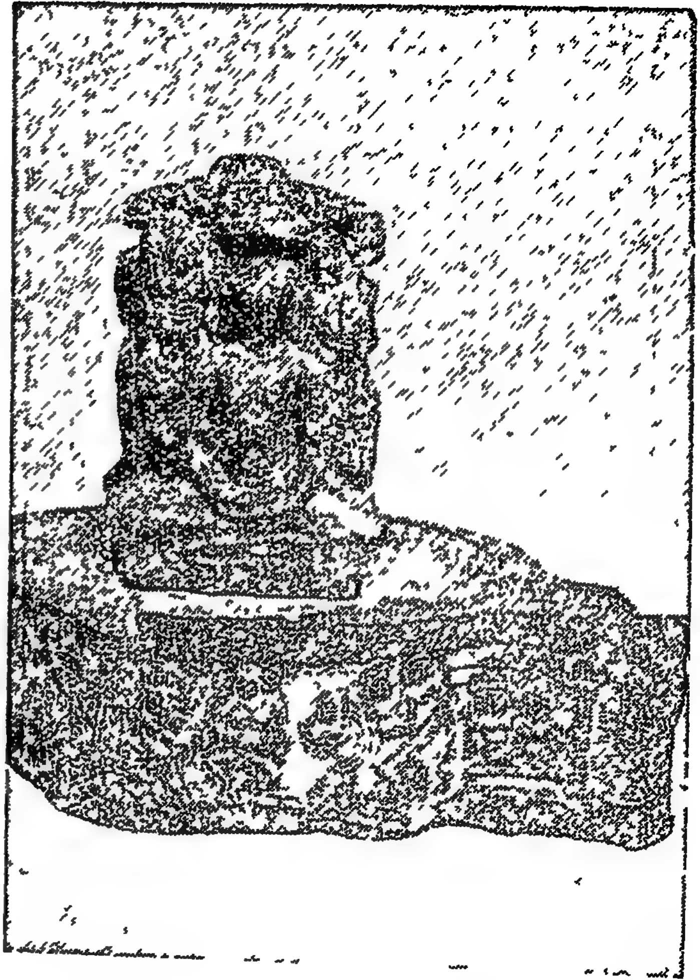
विवुध बोला—'हा यही भ०ऋषभ जिनेश्वर वृषभ थे, यह बात 'प्रभासपुराण' के निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है·—

'कैलाशे विमले रम्ये वृषभोऽय जिनेश्वरः।
चकार स्वावतार च सर्वज्ञः सर्वगः शिवः॥५९॥'

'महाभारत' के 'अनुशासन पर्व' का निम्नलिखित वाक्य भी ऋषभदेव को शिव प्रगट करता हैः—



योगीश्वर शिव की बिजावड़ (देवास) से प्राप्त मूर्ति
(पुरातत्व विभाग ग्वालियर के सौजन्य से)



भ० ऋषभ की सर्वतोभद्र प्रतिमा



कुशानकालीन जिन आयागपट जिसमें त्रिशूल चिह्न अङ्कित है ।
(कंकाली टीला मथुरा से प्राप्त)



खजुराहो से प्राप्त एक जैन चैत्यवृक्ष ।

ऋषभस्त्वा पवित्रणां योगिनां निष्कलः शिवः।'

मलका इन उद्धरणों को सुनकर धर्म समन्वयके सुन्दर आदर्शमें निमग्न हो रही थी और सोचती थी कि 'दुनिया के लोग कैसे है जो धर्म के नाम पर झगड़ते है ? सचमुच देखा जाय तो प्रत्येक धर्म की तहमें एक ही मूलतत्व है और उन की उपासना का आदर्श भी एक है। मतवाद को मदिरा उसे विकृत कर देती है।' फिर उसने पूंछा कि 'जैन शास्त्र किस प्रकार ऋषभ और शिव का साम्य स्थापित करते है !'

इस पर विबुधने बताया-'जैन परम्परा ने आदि जिनेन्द्र भ० ऋषभ अथवा वृषभ का स्मरण शिवजी के रूपमें हुआ मिलता है। देखिये श्री जयसेनाचार्य 'प्रतिष्ठासार' म लिखते है:—

'स्वयं शिवः शाश्वत सौख्यदायि,
स्वयं प्रभुः स्वात्मगुण प्रपन्न।
तस्मात्तदर्थ प्रतिपन्न कामस्त्वामर्चये—
प्रांजलिना नतोऽस्मि ॥४८२॥'

अर्थात्—'हे जिन, आप शिव रूप हो; निरन्तर सुखके देनेवाले हो और आत्मीक गुण के प्रयत्नवान् स्वय प्रभू हो ! अतः उस अर्थ (शिव) का वाञ्छक मै अंजुलि जोड़कर आप को नमस्कार करता हूं।,

'शिवजी के अलंकृत रहस्यमयी रूपका वर्णन और रहस्योद्घाटन श्री वीरसेनाचार्य जी अर्हंत् भगवान्के वर्णन को करते हुए 'धवला' टीका की निम्नलिखित गाथाओ में उपस्थित करते है:—

'णिदद्ध-मोह-तरुणो वित्थिण्णाणाण-सायरुत्तिण्णा।
णिहय-णिय-विग्घ-वग्गा बाहु-बाह-विणिग्गया अयला।
दलिय-मयण-पयावा तिकाल-विस एहि-तीहि णायणेहि.
दिट्ठ-सयलट्ठ-सारा सुदद्ध-तिउरा मुणि-व्वइणो ॥२४॥
ति-रयण-तिसूल धारिय मोहधासुर-कबध-विन्द-हरा।
सिद्ध सयलप्प-रूवा अरहंता दुण्ण-कयंता ॥२५॥"

अर्थात्—'जिन्होने मोहरूपी वृक्षको जला दिया है; विस्तीर्ण अज्ञान—रूपी समुद्रसे उत्तीर्ण हो गये है; जिन्होने अपने विघ्नो के

समूह को नष्ट कर दिया है; जो अनेक प्रकार की बाधाओं से रहित हैं; जो अचल हैं; जिन्होंने कामदेव के प्रभाव को दलित कर दिया है! जिन्होंने तीनों कालों को विषय करने रूप तीन नेत्रों से सकल पदार्थों के सार को देख लिया है, जिन्होंने त्रिपुर अर्थात् मोह, राग और द्वेष को अच्छी तरह से भस्म कर दिया है; जो मुनिव्रती अर्थात् दिगम्बर अथवा मुनियों के पति अर्थात् ईश्वर हैं, जिन्होंने सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र—इन तीन रत्न रूपी त्रिशूल को धारण करके मोह रूपी अन्धकासुर के कबन्धवृन्द का हरण कर लिया है और जिन्होंने दुर्नय का अन्त कर दिया है, ऐसे (शिवरूप) अरिहन्त परमेष्ठी होते हैं।'

'अरिहंत भगवान का शिवरूप में यह चित्र बड़ा ही सार्थक और मार्मिक है।'—अलका ने कहा।

'इतना ही नहीं'—विबुध बोलो, 'बल्कि जैन और शैव सम्प्रदायों में 'रुद्रशिव- स्तवन' भी मिलते हैं, जिनमें बार बार यह कहा गया है कि 'जिनेन्द्र रुद्र सदा वन्दे-जिनेन्द्र शिव सदा वन्दे !' आदि-जिनेन्द्र ऋषभ थे, अत: यह स्तवन उन को लक्ष्य कर रचे गये मानना ठीक प्रतीत होता है। साथ ही भ० ऋषभ का चिन्ह बैल उधर शिवजी का वाहन मिलता है। जैसे शिव जटा जूट युक्त थे, वैसी ही भ० ऋषभ की जटाजूट युक्त मूर्तियां बनाने का विधान जैन शास्त्रों में है। कहते हैं कि शिवजी के निमित्त से गंगा जी का अवतरण पृथ्वी पर हुआ, जैन शास्त्र भी बताते हैं कि गंगा जहां भूतल पर अवतीर्ण हुई वहा गंगा कूट में भ० ऋषभ की जटाजूट मूर्तियां मौजूद हैं। त्रिशूल धारी और अन्धकासुर विध्वंसक शिवजी जैसे कहे गये हैं वैसे ही अर्हत्देव ऋषभ हैं। ऋषभदेव की प्राय: सब ही बातें शिवजी से मिलती हैं। अत: उन्हें अभिन्न समझना चाहिये। ऋषभ ही प्रतीकरूप में शिव कहे गये हैं।'

'यह साम्य बड़ा ही विलक्षण है; किन्तु सुनते हैं कि शिवजी अवैदिक परम्परा के प्राग्वैदिक काल के देवता माने गये हैं?'-अलका ने जिज्ञासा की तो इस पर विबुध ने उत्तर दिया—'हां, विद्वज्जन ऐसा कहते हैं, परन्तु वेदों में उनका उल्लेख वृषभ, रुद्र, महादेव और

शिश्नदेवके रूपमें मिलता है। 'ऋग्वेद' (४।५८।३) मे लिखा है:-

'त्रिधा वद्धो वृषभो रोर वीती, महोदेवो मर्त्यानाविवेश।'

अर्थात्-मन, वचन काय-तीन योगो से सयत वृषभदेव (ऋषभदेव) ने घोषणा की कि महादेव मर्त्यों मे आवास करता है। ऋषभ स्वयं आदि पुरुष थे जिन्हों ने सबसे पहले मर्त्यदशा में देवत्व की प्राप्ति की थी ('तन्मर्तस्य देवत्व मजानमग्रे'-(३१।१७) वह स्वयं महादेव बने थे। साथ ही, रुद्र (शिव) पशुओ के अधिपति थे, यह भी वेद बताते है (रुद्रः पशुनामधिपतिः)। तीर्थंकर ऋषभ के समवशरणमे जाति विरोधी पशु भी समता अनुभव करते और पशु कोठेमें बैठते थे। 'यजुर्वेद'में एक 'रुद्राध्याय' उनकी प्रशंसा में है। इसीप्रकार शिश्नदेव (नग्नदेव = लिङ्गदेव) का भी उल्लेख 'ऋग्वेद' (७।२१।५) मे है जो पशु यज्ञ में बाधा उपस्थित करते थे। इन उल्लेखो से रुद्र-शिवका अवैदिक रूप एवं ऋषभदेव से अभिन्नता स्पष्ट है।'

'शिवजी के इस प्रतीकमय रूपमें एक बड़ा ही रहस्य भरा है!' अलकाने साश्चर्य कहा। इस पर विबुधने प्रसन्न होकर आगे बताया कि 'इस रहस्यवाद के तथ्य से लोग अपरिचित रहे। इस बात को महाकवि कालीदासने भी स्पष्ट करने के लिये 'कुमारसंभव' में कहा था कि (५।७७) 'शिवजी को यथार्थरूप से जाननेवाले और अनुभव करनेवाले मनुष्य कम है।' ('न सन्ति यथार्थ्यविद. पिनाकिनः।') निस्सदेह प्रतीकवाद को समझ लेना हरएक का काम नही! प्रतीको (Symbols) की अलकृत भाषा मे एक आध्यात्मिक काव्य रचने की शैली पहले प्रचलित रही है!'

'किन्तु इस शैली के रहस्यको न समझकर लोग बहके भी बहुत है!'—अलकाने यह कहा तो विबुधने उसका समर्थन किया। और आगे शिवजी के रहस्यमय आध्यात्मिक रूपकी तुलना ऋषभदेव से करके बताई। उन्होने बताया कि 'जैन शास्त्रों में ऋषभ को तपोभूमि एवं कैवल्यधाम कैलाश पर्वत कहा गया है और उधर शिवजी भी कैलाशपति थे। कैलाशपर ही उनके तपमें सुराङ्गनाओ ने बाधा उपस्थित की थी, किन्तु उनके सभी कामबाण नष्ट हुए थे।

अलकृत भाषा में कहा गया है कि शिवजी ने कामदेव को भस्म कर दिया था।'

यह सुनकर अलका ने शङ्का की कि 'शिवजी के साथ तो पार्वतीजी रहती थी, यह बात ऋषभदेवके साथ कैसे घटित होगी?'

विबुधने मुस्कराकर उत्तर दिया—'प्रतीकवादमें पार्वतीका अर्थ शक्ति (वीर्य) होता है। डॉ॰ वासुदेवशरण अग्रवाल ने शिवजी के इस आध्यात्मिक रहस्य का उद्घाटन बड़े ही सुन्दर ढगसे किया है। उन्होंने लिखा है कि मानव शरीर में मेरुदण्ड का रचना तैंतीस पर्वों के संयोग से हुई है। 'पर्व' जिसमें हो उसीको 'पर्वत' कहते हैं। 'पर्वाणि सन्ति अस्मिन्निति पर्वतः' अतः मेरुदण्ड पर्वत हुआ और उसके भीतर रहने वाली शक्ति को उपचार से पर्वतराज की पुत्री 'पार्वती' कहा गया है। उस पार्वती (शक्ति) की स्वाभाविक गति शिव की ओर है। पार्वती शिव को छोड़कर और किसी को वरण कर ही नही सकती; परन्तु पार्वती को शिवकी प्राप्ति तपके द्वारा ही हो सकती है—भोगो के द्वारा नही' ऋषभदेव ने इसीलिए तप तपा और कायगुप्ति का पालन करके कायजन्य कमजोरी को जीत कर के उन्हो ने पार्वतीय (मेरुदण्ड में सुप्त) शक्ति को जगा लिया था। इसीलिए प्रतीकवाद की इस अलकृत भाषा मे कहा जाता है कि शिवजी का पार्वती के साथ विवाह हुआ था।'

'अहा! यह तो बड़ा गहरा रहस्य निकला, अब मै समझी!' अलका ने सुनकर कहा। फिर कुछ सोचने लगी और सिर ऊंचा कर के पूछा—'किन्तु शिवजी तो रुद्र रूप में सहार की मूर्ति हैं, सो ऋषभदेव से इसका सामजस्य कैसे हो सकता है?'

'सामञ्जस्यतो ठीक बैठ सकता है, केवल समझने—बूझनेकी जरूरत है।'—विबुध बोला। 'वह भी बताइये?'—अलका ने फिर पूछा। इस पर विबुध बोला—'शिव शाश्वत आनन्दके प्रतीक है। जब तक मोह की माया—ममता का सहार नही किया जावेगा तब तक स्वात्मानन्दका अनुभव नही हो सकता। ऋषभदेव ने कर्मों का सहार किया था, इसीलिए तो उनकी स्तुति रुद्र रूपमें भी की गई है।

"पापान्धकारनिर्णाश मकरध्वज लोभ-मोहपुर दहनं।
तपोभस्म भूषिताङ्ग जिनेन्द्र-रुद्रं सदा वन्दे ॥१॥

संयम वृषभारूढं तपउग्र महन्त तीक्ष्ण शूलधरं ।
संसार करि विदारं जिनेन्द्र रुद्रं सदा वन्दे ॥२॥ इत्यादि ॥"

हा यह भी ठीक रहा, किंतु शिवलिङ्ग पूजाका समन्वय कैसे होगा?'—अलका ने आगे पूंछा

उत्तरमे विबुधने बताया कि "शिवलिङ्ग पूजाका अर्थ अध्यात्म रूप मे अतत्व को पा लेना है, किन्तु आजकल के लोग उसमे काम-वासना की छाया देखते हैं। यह बड़ी भूल है । प्राचीन भारतीय मान्यतामे मस्तिष्क को कलश अथवा कुंभ की उपमा दी गई है, जिस से निरन्तर अमृत झरता है । इस अमृत का रसपान निरन्तर योगी जन करते है । विषयी पुरुष वासना मे फसकर उस का दुरुपयोग करते है । इस प्रतीक के द्वारा ब्रह्मचर्यपूर्ण योगचर्या की पुष्टि होती है। ऋषभदेव पूर्ण ब्रह्मचारी रहकर ही अमृतत्वपायी शिव-रूप बने थे। रेणु—वीर्य के दुरवस्थित होने पर उस को ब्रह्मचर्य द्वारा ही ऊर्जस्वरेत करके जीवित कर दिया जाता है। रेणुका के पुनर्जीवित होने का रहस्य यही हैं।'

'अरे! आप तो हर तरह से ऋषभदेव और शिवजी का साम्य स्थापित कर रहे हैं!' अलका ने विस्मय से टोका। विबुध ने कहा-'हाथ कगन को आरसी क्या ? 'शिवजी ने विषपान किया'—इसका रहस्य भो ऋषभदेवकी चर्या मे मिलता है। 'निघण्टु' में जलके १०१ नाम दिये है, जिनमें अमृत और विष भी है। आत्मगुणोके विनाश की प्रवृति आसुरी शक्ति के निमित्त से होती है, विषरूप की द्योतक है। शिवनें उसे जीता था—ऋषभ नें भी पुण्य-पाप, रति-अरति-सब पर विजय पाई थी। अतः शिवका विषपान प्रसग उनकी समवृत्ति का द्योतक है, जिसमें आसुरोवृत्ति पछाड़ दी गई थी। ऋषभदेव समता के परम आदर्श थे।'

यह भी खूब साम्य रहा! अच्छा, अब भस्मासुर और त्रिपुर प्रसंग का क्या रहस्य है?'—अलकाने पूंछा। इस पर विबुधने बताया कि भस्मासुर और त्रिपुर शरीर से बाहर नही है। वे मानव की मन-वचन-काय सबधो योग क्रियायें है, जिनपर अधिकार पाये विना कोई भी योगी जीवनमुक्त परमात्मदशाको नही पा सकता। ऋषभदेवने

मनदण्ड,वचनदण्ड और काय-दण्डद्वारा त्रिपुर(त्रियोग)को जीत लिया था-उनकी अधोवृत्ति को जीत लिया था। इसीलिये ऋषभ शिव कहे गये हैं। शिवजी जैसे दिगम्बर थे वैसे ही ऋषभ थे। शिवकी तरह ऋषभ भी त्रिशूलधारी कहे गए हैं। प्राचीनकालमें सर्प ज्ञान-समृद्धि का प्रतीक था-जैन मान्यता में सर्प के लिए भी स्थान है। शिव के सर्प ज्ञान-समृद्धिके प्रतीक होने से भ० ऋषभ की सर्वज्ञताके द्योतक हैं। ऋषभ कैलाशसे मुक्त हुये,इसलिए कैलाशपति हैं! कैलाशकी पूजा का प्रचलन इसी कारण हुआ जो लिङ्गाकार है और तिब्बतीय भाषामें लिङ्गक्षेत्र का द्योतक है। इस दृष्टिसे शिवलिङ्ग की पूजा शिवक्षेत्र अर्थात् कैलाश की पूजा ही कही जा सकती है! अक्षयवट ऋषभके केवल ज्ञान का वृक्ष है। शिवरात्रि भी भ० ऋषभके निर्वाण का त्यौहार है।'

'शिवरात्रि ऋषभ निर्वाण का त्यौहार कैसे हो सकता है, जबकि ऋषभने निर्वाण माघकृष्ण चतुर्दशी को प्राप्त किया और शिवरात्रि फाल्गुनमे मनाई जाती है?'—अलकाने शंका की। इसपर विबुधने अलकाका समाधान करते हुये कहा'—यह अन्तर अर्वाचीन है—प्राचीन नहीं है। हिन्दुओं की 'ईशान संहिता' में यही तिथि शिवरात्रि के लिए लिखी हुई है:—

माघे कृष्ण चतुर्दशमादि देवो महानिशि।
शिव लिङ्ग तयोद्भूतः कोटिसूर्य समप्रभः॥
तत्काल व्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रि व्रते तिथि॥'

इस उद्धरण में दृष्टव्य जो महत्वपूर्ण बात है वह यह है कि इस तिथि को महानिशामें आदिदेव, जो जैनों के आदि तीर्थंकर ऋषभ है, शिवलिंग रूप से प्रगट हुये। अर्थात् जो तबतक आदिदेव कहलाते थे, वे माघकृष्ण १४ को शिव पद प्राप्त करने के कारण 'शिव' कहलाने लगे। किंतु उत्तर भारतमें जो फाल्गुण कृष्ण १४ को शिव-रात्रि मनाने का रिवाज है उसका कारण उत्तर एवं दक्षिण देशीय पंचाङ्गोंका गणना भेद है-उत्तरदेशवाले मासका आरंभ कृष्ण पक्षसे मानते हैं,जबकि दक्षिण वाले शुक्लपक्षसे-इसका यह भेद दिखता है।'

इस प्रकार के वर्णनसे तो ऋषभदेव और शिवजी की सभी

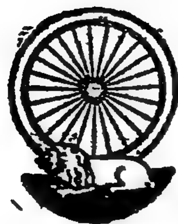
बातें एक समान ही प्रगट होतीं हैं।'—अलकाने सोचसमझकर कहा।

विबुध मुस्कराया और बोला—'एक और विलक्षण बात है और वह है मूर्तियो की ! भ० ऋषभ और भ० शिवकी मूर्तियां भी एक दूसरे से मिलती जुलती बनाई गई है।'

'अरे ऐसी मूर्तियां है कहा ?' अलकाने कौतूहल से पूंछा।

विबुध ने बताया—'इन्दौर सग्रहालय मे शिवजी की एक ऐसी मूर्ति है जो बिल्कुल भ० ऋषभकी मूर्तिके समान है वैसी शिवमूर्ति अन्यत्र भी मिली है। उधर ऋषभदेव की चतुर्मुखी मूर्तियां लिङ्गाकार परिधा सहित दक्षिणभारत मे मिलती है। श्री पं० हीरालाल जी जैनको भी एक ऐसी भ० ऋषभदेवकी मूर्ति मिली है जो जटाजूट मय त्रिशूलधारी व्यक्त की गई है। इनके संलग्न चित्र देखिये तो दोनो का सामंजस्य स्पष्ट होता है।'

अलका इन सब बातो को सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुई और कहने लगी कि शैवो और जैनो के उपास्य और मान्यताये एक होते हुए भी दोनो में मतभेद उत्पन्न हो गया—यह कालका ही वैषम्य हो सकता है।' यहीं पर उसदिन दोनो की चरचा समाप्त हुई।



—समाप्त—

गणधर वृषभसेन और आदि संघ

'आदि तीर्थाधिनाथोऽपि मोक्षमार्गं प्रवर्तयन् ॥
चतुरुत्तरयाऽशीत्या विविधर्द्धिविभूषितैः ।
चिर वृषभसेनादि गणेशैः परिवेष्टितः ।
खपञ्चसप्तवाराशिमितपूर्वधरान्वितः ।
खपञ्चैक चतुर्मेयशिक्षमुनिभियुतः ॥ इत्यादि'

—श्री जिनसेनाचार्य

अलकाने जैसे ही विबुध को स्वाध्यायकक्षमे आते देखा, उसने यह प्रश्न किया कि 'आदि भगवानने सर्व प्रथम जिस तीर्थ-संघकी स्थापना की थी उसके विषयमे भी कुछ प्रकाश डालिये।' इसपर विबुधने बताया कि 'आदि भगवानने आदि तीर्थ और संघकी नींव सत्य और समता की आधारशिलाओ पर जमाई थी। उनके तीर्थमें जिसप्रकार वस्तुस्वरूप ही धर्म था, उसीप्रकार समभाव और समानता पर आधारित अनुशासन उस आदि संघका मूलसूत्र था। चाहे राजपुत्र हो और चाहे एक दरिद्रोका बेटा-दोनोंके लिये ही उनकी योग्यता और तपश्चरण सम्मानका मापदण्ड था। संघमें आचार्य, उपाध्याय शैक्ष्य, स्थविर आदि अनेक पदविभूषित साधु होते थे और आर्यिका, क्षुल्लिकादि पदों पर आरूढ साध्वीयां थी। श्रावको में भी प्रमुख गृहस्थाचार्य और श्राविकाओ में अग्रणी श्राविका थी। प्रत्येक पदके लिए आचार नियम और योग्यता का मापदण्ड निर्धारित था। इन में पारङ्गत होने पर समस्त संघके समक्ष प्रत्येक की नियुक्ति आदि विषयों पर ऊहापोहात्मक विचार होता था। इसप्रकार संघ अतीव

संगठित और अनुशासित था।'

'सुना है कि इस संघकी शरणमें पशु तक पहुंचे थे?'–अलका ने जिज्ञासा की तो विबुधने बताया कि 'वह आदि संघ त्रिलोक भुवनाश्रय था–जीवमात्र उसकी छत्रछायामें पहुंचकर आत्म कल्याण करता था।'

'अच्छा भइया, यह भी बताओ, इस संघमें सबसे पहले भ० ऋषभका शिष्य कौन हुआ था?' अलकाने आगे पूंछा तो विबुधने कहा कि 'जब ऋषभदेव केवली भगवान हो गये, तो सम्राट् भरत का छोटा भाई और पुरिमताल नगर का शासक वृषभसेन उनकी वन्दना करने आया और वही भ० ऋषभका पहला शिष्य और प्रथम गणधर हुआ था। उनके पश्चात और भी अनेक भव्य जीवोने उनका शिष्यत्व गृहण किया था।

'बड़े हो महाभाग थे वे जीव जिनको आदि भगवानके शिष्य होने का गौरव प्राप्त हुआ था!'–अलकाने कौतूहल से कहा। विबुधने यह सुना और उसके मानस पटल पर उस स्वर्णकालका मानचित्र झलक गया। विबुधको याद आया कि हस्तिनापुरके शासक जयवर्मा अपने गुणो और सत्कार्यो के लिए प्रसिद्ध थे। वह भी भगवान की शरणमे आये और मुनि हो गये। समस्त श्रुतज्ञान मे वह पारङ्गत हो गये और संयमसे उनकी काया चमकने लगी। चारो ज्ञानके वह अधिकारी हुये। फलतः जयकुमार भगवानके ७१ वे गणधर घोषित कर दिये गये। सघ कई गणोमे विभक्त था, इसीलिए भ० ऋषभके ८४ गणधर थे। जयकुमार के साथ विजय, जयत, सजयन्त आदि उनके भाइयो एव रविकीर्ति, रविजय, अरिदम, अरिंजय, सुजय, सुकान्त, अजितजय, महाजय, अतिवीर्य, वरजय, रविवीर्य आदि सम्राट् भरतके पुत्रोने भी मुनिव्रत धारण किये थे।

'भोगसे मुंह मोड़कर ये राजपुत्र योगी बने, धन्य थे वे!'–अलका ने कहा।

विबुध बोला-'उन्होने निस्सदेह मानवता का ठीक मूल्याकन किया था। जानती हो अलका, भ० ऋषभके संघमें चोरासी हजार चोरासी मुनिगण थे, जिनमें हजारो मुनि पूर्वोके ज्ञाता थे, हजारो

हो अवधिज्ञानी मनःपर्यय ज्ञानी और केवल ज्ञानी थे। शिक्षक-उपाध्यायो और ऋद्धिधारी आदि मुनियो की संख्या भी अपार थी। इसी प्रकार साध्वी-गणियो का भी सघ था, जिसकी संख्या तीन लाख पचास हजार थी। इनमें प्रमुख गणनेत्री ब्राह्मी, सुन्दरी, सुलोचना आदि महासतियां थी। दृढव्रत आदि तीन लाख श्रावक थे और सुव्रता आदि पाच लाख श्राविकायें थी। इनके अतिरिक्त देवदेवियां और चौपाये आदि तिर्यञ्चजीव भी भगवान की शरणमें पहुंचे थे। सभी जीव भ० ऋषभदेवको चहुं ओर घेरे हुये समतारसका आनन्द लूटते थे। सम्राट् भरत निरन्तर उनकी वन्दना करने आते थे और उनके मुखारविन्दसे धर्मामृतका रसपान करते थे। प्रत्येक तीर्थंकरकी भांति भ० ऋषभदेव की तीनकालो मे अनक्षरी वाणी खिरती थी, जिसे प्रत्येक प्राणी समझ लेता था।'

'यह एक विलक्षण बात थी!' अलकाने कहा। किन्तु विबुध ने बताया कि इसीलिए वह दिव्यध्वनि कहलाती थी। मागधदेव उसका परिणमन इस ढंगसे करते थे कि प्रत्येक जीव उसे अपनी वाणीमें समझ लेता था। आज भी ऐसे यंत्र बन गये है जिनके द्वारा अंग्रेजी आदि भाषामें बोलते हुए व्यक्तिको एक भारतीय अपनी मातृभाषा मे सुन सकता है। इसलिए तीर्थंकर की दिव्यध्वनिकी विलक्षणता एक प्रकृति-साध्य वैज्ञानिक तथ्य है।'

'अच्छा यह तो ठीक, पर भगवान की वाणी सुरक्षित कैसे रही?' अलकाने पूंछा।

विबुधने कहा—'वृषभसेनादि गणधर महाराजो ने उनकी वाणी को अङ्ग और पूर्व ग्रन्थोमे रचकर अपनी स्मृतिमे सुरक्षित रक्खा और उसी अङ्ग एवं पूर्व ज्ञानको उन्होंने अपनी शिष्य परम्परा को बताया। ऋषियोकी परम्परा द्वारा वह ज्ञान सुरक्षित रहकर आगे आगे होने वाली सन्तानको मिलता रहा है। ऋषियोका यह महान उपकार था!'

विबुध और अलकाने भक्तिभावसे हृदय भर लिये और वे स्वाध्यायकक्षमे बाहर चले गये।

निर्वाण कल्याणक

'सतो सत्फल सम्प्राप्त्यै विहरन् स्वगणैः समम् ।
चतुर्दशदिनोपेन सहस्राब्देन पूर्वकम् ।। ३२२ ।।
लब्धं कैलासमासाद्य श्री सिद्धशिखरान्तरे ।
पौर्णमासी दिने पौषे निरिच्छः समुपाविशत् ।।३२३।।'

—महापुराणम् ४७ पर्व

अलका जब फिर स्वाध्याय-कक्षमें आई, तो विबुधने उससे कहा—'आदि तीर्थंकर ऋषभके चरित्र का निर्वाह तुम्हारे आग्रह से हो गया । अब तो उन निर्वाण कल्याणक का दिग्दर्शन करना शेष है ।'

'और यही वह अद्वितीय प्रसंग है जो मानवको इसी जन्ममे परमात्मा के साक्षात् दर्शन करा देता है ।'—यह कहते हुए अलका ने निर्वाण कल्याणक का महत्व प्रगट किया ।

विबुध बोला—'सच तो यही है; परमात्मा मानवसे अलग किसी दूर देशमें नही बैठा है—वह उसके अन्तरमें है । जहां मानव अन्तर शुद्ध बना कि वह निवृति मार्ग पर आगे बढता हुआअपनी कमजोरियों को जीत लेता है और मानवों में महान बनता है । भ० ऋषभ का जीवन उसका ज्वलन्त उदाहरण है । कर्मजित बनकर वह केवल-ज्ञानी हुऐ—तब मानवने चरमचक्षुओ से जीवन-मुक्त परमात्मा के दर्शन उनके व्यक्तित्व में किये और अन्तमें वह पूर्णमुक्त सिद्ध पर-मात्मा बनने के लिए उन्मुख हुये !

'सारे आर्य खडमें विहार और धर्मप्रचार करके भ० ऋषभ

अन्तमें कहां पहुंचे थे ?'—अलकाने पूछा ।

विबुधने बताया—जब भ० ऋषभकी आयुके १४ दिन बाकी रह गये थे तब वह कैलाश पर्वतकी शिखिर पर पौषशुक्ल पूर्णिमा को आकर विराजमान हुऐ और योगोंको निरोध दिया। इसी दिन भरत म० ने स्वप्नमें देखा कि महामेरु पर्वत अपनी लम्बाई से सिद्ध क्षेत्र तक पहुंच गया । इसीप्रकार युवराज अर्ककीर्ति ने भी स्वप्नमें देखा कि एक महौषधिका वृक्ष मनुष्य के जन्मरूपी रोगको नष्टकर फिर स्वर्गको जारहा है। अन्य प्रमुख महानुभावोने भी ऐसे ही स्वप्न देखे। इन स्वप्नोका फल पुरोहितने बताया कि आदि भगवान् ऋषभदेव कर्मोका नाश करके निर्वाण क्षेत्रको पधारेंगे । इतने ही में आनन्द नामक व्यक्ति ने सम्राट् भरतकी सेवामें उपस्थित होकर कैलाश पर्वत पर भ० ऋषभके पधारने और योग निरोध करने का सवाद सुनाया। यह सुनते ही सम्राट् भरत और सभी लोग कैलाश पर्वत पर पधारे और भक्ति भावसे जिनेश्वर की वन्दना की !

'धन्य थे वे जिनको प्रभूदर्शन सुलभ हुए ।'—अलकाने भक्ति-भाव प्रगट किया ।

विबुधने [बताया]—'सम्राट भरतने महामह पूजा करते हुए चौदह दिन भगवानकी सेवामे विताये। अन्तमें माघ कृष्ण चतुर्दशीके दिन सूर्योदय के शुभ मुहुर्त और अभिजित् नक्षत्रमें भ० ऋषभ पूर्वदिशा की ओर मुखकरके पर्यंकासनसे विराजमान हुए। उन्होने सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति नामक शुक्लध्यान से तीनो योगो का निरोध किया और अन्तिम चौदहवे अयोग केवली गुणस्थान में अ, इ, ई, उ, ऋ, लृ अक्षरो के उच्चारण प्रमाण काल मात्र स्थिर रहे, जिसमें उन्हो ने व्युपरत-क्रिया-निवर्ति नामक शुक्लध्यान को धारण कर अघातिया कर्मोंको भी नाशकर दिया। औदारिक, तैजस और कार्मण—तीनो ही शरीर उन की आत्मा से सदा के लिए छूट गये । उनकी मुक्त आत्मा लोक शिखिर पर स्थित सिद्धालयमे जा विराजमान हुई!'

'तो उससमय इन्द्र और देवता भगवान को निर्वाण पूजा करने आए होंगे ?'—अलकाने पूछा ।

विबुधने बताया—'इन्द्रने सम्राट् भरतके साथ २ निर्वाणकल्याण

का महती उत्सव मनाया था। भगवान् की अन्तिम पूजा की और अग्नि कुमार देवो ने उनके शरीर का अन्त्येष्टि संस्कार किया। बीचमें भ० ऋषभका स्तूप रहा और इस के इधर उधर गणधरों और सामान्य केवलियो के स्तूप रचे गये। सबने मिलकर आनन्द नामक नाटक किया।'

'हां, भाई वह निर्वाण कल्याणकका अपूर्व समय था-तब मानवो मे अनेक मृत्यु को जीत कर मृत्युञ्जय बने थे। वह महान् अवसर था आनन्द मनाने का।'—अलका ने आनन्द से कहा।

विवृचन आगे बताया-'किन्तु उधर सम्राट् भरत पिताके वियोग को सहन न कर सके और शोकाग्निमे सतप्त हो गये। वृषभसेन गण-धरने जब यह देखा तो उन्होने भरत को समझाया और सम्बोधा। भरत ने ससार के स्वरूप को पहिचाना और कैलाश पर्वत पर उन की स्मृति म ७२ जिनालय निर्मापित कराके इस घटना को अमर कर दिया। कालान्तर मे भरतने भी कर्मोंका नाश करके मुक्तपद पाया था। देखा अलका, यह था ऋषभका आदर्श जीवन। उनके नाम और काममें वह ओज है, वह शक्ति है और वह प्रेरणा है जो मानव को सत्यके दर्शन करा देती है। मानवता का अर्थ है जीवमात्र का हित साधना और फिर आत्मदर्शन करके शुद्ध-बुद्ध निरंजन शाश्वत परमपद को पाकर मानवता को अमर बना लेना उसका परमोत्कर्ष है। अलका, तुम्हारे आग्रह से भ० ऋषभका यह पतितपावन चरित्र आधुनिक रूपमे रचा गया—इससे मानव का कुछ हित सधे तो ही हमारा—तुम्हारा यह प्रयास सार्थक कहा जायगा!

'सार्थक तो यह है ही, भइया! इस के श्रवण—मनन द्वारा त्रियोग की शुद्धिका लाभ क्या कुछ कम है? श्री मानतुङ्गाचार्यजी ने तो भगवान की आराधना-भक्ति द्वारा जो चमत्कार कर दिखाया वह 'ऋषभ' नामकी पावन-शक्ति का प्रमाण है। जो लोग जिनेन्द्र स्तुतिका रहस्य नही जानते, वह लाख प्रयत्न करे तो भी अपने तक को ठीकसे नही पहिचान पाते हैं। भले ही आज जीवन्मुक्त परमात्मा जिनेन्द्र के साक्षात् दर्शन नही होते परन्तु उनकी वीतराग छवि प्रत्येक भक्तके मानस पटल पर सदासे ही अंकित है। वह जानता

भक्ति का पावन-प्रवाह !



भक्तामर स्तोत्र !

भक्तामरस्तोत्रम् ।

आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधिकरतार ।
धरमधुरधर परमगुरु, नमों आदि अवतार ॥

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणामुद्योतकं दलितपापतमोवितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादावालवनं भवजले पततां जनानां ॥१॥
सुरनतमुकुट रतन छवि करैं । अंतर पापतिमिर सब हरैं ॥
जिनपद वंदों मनवचकाय । भव जलपतित-उधरनसहाय ॥

यः संस्ततः सकलवाङ्मयतत्ववोधादुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेंद्रम् ॥२॥
श्रुतपारग इंद्रादिक देव । जाकी थुति कीनी कर सेव ॥
शब्द मनोहर अरथ विशाल । तिस प्रभुकी वरनों गुनमाल ॥

बुद्धया विनापि विबुधार्चितपादपीठ स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहं ।
बालं विहाय जलसंस्थितमिंदुबिंबमन्यः क इच्छति जनःसहसा गृहीतुं ॥३
विबुधवंद्यपद मैं मतिहीन । हो निर्लज्ज थुति-मनसा कीन ॥
जलप्रतिबिंब बुद्ध को गहै । शशिमंडल बालक ही चहै ॥

वक्तुं गुणान्गुणसमुद्र शशांककांतां कस्ते क्षमःसुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्धया ।
कल्पांतकालपवनोद्धतनक्रचक्रं को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुज्याभ्यां ॥४
गुन-समुद्र तुमगुन अविकार । कहत न सुरगुरु पावैं पार ॥
प्रलयपवनउद्धत जलजंतु । जलधि तिरै को भुजबलवंतु ॥

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्यमृगो मृगेंद्रं नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥
सो मैं शक्तिहीन थुति करूं । भक्तिभाववश कछु नहिं डरूं ॥
ज्यों मृगि निजसुतपालन हेत । मृगपतिसन्मुख जाय अचेत ॥

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति तच्चाम्रचारुकलिकानिकरैकहेतुः ॥६॥

मैं शठ सुधीहँसन को धाम । मुझ तव भक्ति बुलावै राम ॥
ज्यों पिक अंबकलीपरभाव । मधुऋतु मधुर करै आराव ॥

त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥

तुम जस जंपत जन छिनमाहिं । जनम जनमके पाप नशाहिं ॥
ज्यों रवि उगै फटै ततकाल । अलिवत नील निशातमजाल ॥

मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेदमारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ॥८॥

तुव प्रभावतैं कहूं विचार । होसी यह थुति जनमनहार ॥
ज्यों जल कमलपत्रपै परै । मुक्ताफलकी द्युति विस्तरै ॥

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं, त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव, पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥९॥

तुम गुन महिमा हतदुखदोष । सो तो दूर रहो सुखपोष ॥
पापविनाशक है तुम नाम । कमलविकाशी ज्यों रविधाम ॥

नात्यद्भुतं भुवनभूषण भूतनाथ, भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा, भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥

नांहि अचंभ जो होहि तुरत । तुमसे तुम गुण वरणत संत ॥
जो अधीनको आपसमान । करै न सो निंदित धनवान ॥

सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलापशुभ्राः गुणास्त्रिभुवन तव लङ्घयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥

पूरनचन्द जोति छविवत । तुमगुन तीनजगत लांघत ॥
एक नाथ त्रिभुवन आधार । तिन विचरतको करै निवार ॥

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभिर्नीतं मनोगपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥१५॥

जो सुरतिय विभ्रम आरभ । मन न डिग्यो तुम तौ न अचभ ॥
अचल चलावै प्रलय समीर । मेरुशिखर डगमगै न धीर ॥

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः कृत्स्नं जगत्रयमिदं प्रकटीकरोषि
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः१६

धूमरहित वाती गतनेह । परकाशै त्रिभुवन घर एह ॥
वातगम्य नाहीं परचड । अपर दीप तुम बलो अखड ॥

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र लोके ॥१७॥

छिपहु न लुपहु राहुकी छांहिं । जगपरकाशक हो छिनमांहिं ॥
घन अनवर्त्त दाह विनवार । रवि तैं अधिक धरो गुणसार ॥

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तवमुखाब्जमनल्पकान्ति विद्योतयज्जगदपूर्वशशाङ्कबिम्बम् ॥१८॥

सदा उदित विदलित मनमोह । विघटित मेघराहु अविरोह ॥
तुव मुखकमल अपूरव चद । जगतविकासी जोति अमंद ॥

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमःसु नाथ
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ॥१९॥

निशदिन शशि रविको नहि काम । तुम मुख चन्द हरै तमधाम ॥
जो स्वभावतैं उपजै नाज सजल मेघ तो कौनहु काज ॥

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ।
तेजो महामणिषु याति यथा महत्त्वं नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

जो सुबोध सोहै तुम माहिं । हरि हर आदिकमें सो नाहिं ॥
जिम द्युति महारतन में होय । काचखड पावै नहि सोय ॥

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥२१॥

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया ।
स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया ॥

कछू न तोहि देखके जहां तुही विशेखिया ॥
मनोग चित्तचोर और भूलहू न पेखिया ॥

स्त्रीणां शतानि शतसो जनयंति पुत्रान्नान्य सुतं त्वदुपम जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानु सहस्ररश्मि प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२

अनेक पुत्रवतिनी नितविनी सपूत हैं ।
न तो समान पुत्र और माततैं प्रसूत हैं ।
दिशा धरत तारिका अनेक कोटि को गिनैं ।
दिनेश तेजवत एक पूर्व ही दिशा जनै ॥

त्वामामनन्ति मुनयः परम पुमांसमादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयति मृत्युं नान्यःशिवःशिवपदस्य मुनींद्र पथा ॥२३

पुरान हो पुमान हो पुनीत पुन्यवान हो ।
कहैं मुनीश अंधकारनाशको सुभान हो ॥
महत तोहि जानके न होय वश्य कालके ।
न और मोहि मोखपथ देय तोहि टालके ॥

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसङ्ख्यमाद्यं ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम् ।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥

अनत नित्य चित्तकी अगम्य रम्य आदि हो ।
असख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो॥
महेश कामकेतु योग ईश योग ज्ञान हो ।
अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो ॥

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात् त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रयशङ्करत्वात् ।
धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानाद्व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि॥२५

तुही जिनेश बुद्ध है सुबुद्धिके प्रमानतैं ।
तुही जिनेश शंकरो जगत्त्रये विधानतैं ॥
तुही विधात है सही सुमोखपथ धारतैं ।
नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थके विचारतैं ॥

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय तुभ्यं नमो जिन भवोदधिशोषणाय ॥२६॥

नमो करूं जिनेश तोहि आपदा निवार हो ।
नमो करूं सुभूरि भूमिलोकके सिंगार हो ॥
नमो करूं भवाब्धिनीरराशि शोष हेतु हो ।
नमो करूं महेश तोहि मोखपथ देतु हो ॥

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषैस्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश।
दोषैरुपात्तविबुधाश्रयजातगर्वैः स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

तुम जिन पूरनगुनगन भरे । दोष गर्वकरि तुम परिहरे ॥
और देवगण आश्रय पाय । स्वप्न न देखे तुम फिर आय ॥

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूखमाभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥२८॥

तरुअशोकतर किरन उदार । तुम तन शोभित है अविकार ॥
मेघनिकट ज्यों तेज फुरत । दिनकर दिपै तिमिर निहनत ॥

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ॥२९॥

सिंहासन मनिकिरन विचित्र । तापर कंचनवरन पवित्र ॥
तुमतन शोभित किरनविथार । ज्यों उदयाचल रविनमहार ॥

कुन्दावदातचलचामरचारुशोभं विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम् ।
उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधारमुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

कुन्दपुहुपसितचमर ढुरंत । कनकवरन तुमतन शोभंत ॥
ज्यों सुमेरुतट निर्मल कांति । झरना झरै नीर उमगांति ॥

छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्ककान्तमुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम् ।
मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

ऊंचे रहैं सूर दुति लोप । तीन छत्र तुम दिपैं अगोप ॥
तीन लोककी प्रभुता कहैं । मोती झालरसों छवि लहैं ॥

गम्भीरताररवपूरितदिग्विभागस्त्रैलोक्यलोकशुभसङ्गमभूतिदक्षः ।
सद्धर्मराजजयघोषणघोषकः सन्खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥

दुंदुभि शब्द गहर गभीर । चहुँदिश होय तुम्हारैं धीर ॥
त्रिभुवनजन शिवसंगम करैं । मानूं जय जय रव उच्चरैं ॥

मन्दारसुन्दरनमेरुसुपारिजात सन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा ।
गन्धोदबिन्दुशुभमन्दमरुत्प्रयाता दिव्या दिवः पतति ते वयसां ततिर्वा ॥३३

मंद पवन गंधोदक इष्ट । विविध कल्पतरु पुहुपसुवृष्ट ॥
देव करैं विकसित दल सार । मानों द्विजपंकति अवतार ॥

शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती
प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तरभूरिसंख्या दीप्त्याजयत्यपिनिशामपिसोमसौम्याम् ॥३४

तुम तन-भामंडल जिनचन्द । सब दुतिवंत करत हैं मन्द ॥
कोटिशंख रवितेज छिपाय । शशिनिर्मलनिशि करैं छाय ॥

स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गरोष्टः सद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्या ।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्वभाषास्वभावपरिणामगुणप्रयोज्यः ॥३५॥
स्वर्गमोखमारग संकेत । परम धरम उपदेशन हेत ॥
दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध । सब भाषागर्भित हितसाध ॥

उन्निद्रहेमनवपंकजपुंजकांती, पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ ।
पादौपदानि तव यत्र जिनेंद्र धत्तःपद्मानि तत्र विबुधा परिकल्पयंति ॥३६
विकसित सुवरन कमलदुति, नखदुतिमिलि चमकाहिं ।
तुमपद पदवी जहँ धरो, तहँ सुर कमल रचाहिं ॥

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेंद्र, धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।
यादृक्प्रभा दिनकृतःप्रहतांधकारा तादृक् कुतोग्रहगणस्य विकाशिनोपि॥३७
ऐसी महिमा तुमविषैं, और धरैं नहि कोय ।
सूरज में जो जोत है, नहिं तारागण होय ॥

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूलमत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोप ।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतत,दृष्ट्वा भय भवति नो भवदाश्रितानां ॥३८॥
मदअवलिप्तकपोल-मूल अलिकुल झंकारैं ।
तिन सुन शब्द प्रचंड क्रोध उद्धतअति धारैं ॥
कालवरन विकराल, कालवत सनमुख आवे ।
ऐरावत सो प्रबल, सकल जन भय उपजावैं ॥
देखि गयद न भय करै तुम पदमहिमा छीन ।
विपतिरहित सपतिसहित, वरतैं भक्त अदीन ॥

भिन्नेभकुंभगलदुज्ज्वलशोणिताक्तमुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः ।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोपि नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रित ते ॥३९॥
अतिमदमत्तगयंद कुंभ थल नखन विदारैं ।
मोती रक्त समेत डारि भूतन सिंगारैं ॥
बांकी दाढ विशाल, वदन में रसना लोलै ।
भीम भयानक रूप देखि जन थर-हर डोलै ॥
ऐसे मृगपति पगतलैं, जो नर आयो होय ।
शरण गये तुम चरणकी, बाधा करै न सोय ॥

कल्पांतकालपवनोद्धतवह्निकल्प,दावानलज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंग ।
विश्व जिघित्सुमिव समुखमापतत त्वन्नामकीर्त्तनजल शमयत्यशेष ॥
प्रलय पवन कर उठी आग जो तास पटतर ।
वमैं फुलिंग शिखा उतग पर जलैं निरन्तर ॥

जगत समस्त निगल्ल भस्म करि हैगी मानों ।
तडतडाट दवअनल्ल, जोर चहुंदिशा उठानों ॥
सो इक छिनमें उपशमैं, नामनीर तुम लेत ।
होय सरोवर परिनमैं विकसित कमल समेत ॥

रक्तेक्षणं समदकोकिलकण्ठनील, क्रोधोद्धत फणिनमुत्फणमापतन्त ।
आक्रमति क्रमयुगेण निरस्तशङ्कस्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१

कोकिलकंठसमान, श्याम तन क्रोध जलंता ।
रक्तनयन फुंकार, मारविषकण उगलंता ॥
फणको ऊंचो करै, वेग ही सन्मुख धाया ।
तब जन होय निशंक, देख फणिपतिको आया ॥
जो चापै निज पगतलैं व्यापै विष न लगार ।
नागदमन तुम नामकी है जिनके आधार ॥

वल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनादमाजौ बलं बलवतामपि भूपतीनां ।
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं,त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥४२॥

जिस रनमाहिं भयानक रव कर रहे तुरंगम ।
घनसे गज गरजाहिं मत्त मानों गिरि जंगम ॥
अति कोलाहल माहिं बात जहँ नाहिं सुनीजै ।
राजन को परचंड, देख बल धीरज छीजैं ॥
नाथ तिहारे नामतैं सो छिनमांहि पलाय ।
ज्यों दिनकर परकाशतैं अन्धकार विनशाय ॥

कुन्ताग्रभिन्न गजशोणितवारिवाहवेगावतारतरणातुरयोधभीमे ।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षास, त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥

मारैं जहां गयंद कुंभ हथियार विदारैं ।
उमगै रुधिर प्रवाह वेग जलसम विस्तारैं ॥
होय तिरन असमर्थ महाजोधा बलपूरे ।
तिस रनमें जिन तोर भक्त जे हैं नर सूरे ॥
दुर्जय अरिकुल जीतके, जय पावैं निकलंक ।
तुम पद पंकज मन बसें ते नर सदा निशंक ॥

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्रपाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थितयानपात्रास्त्रासं विहाय भवतःस्मरणाद्व्रजन्ति॥४४॥

नक्र नक्र मगरादि मच्छकरि भय उपजावैं ।
जामैं बडवा अग्नि दाहतैं नीर जलावैं ॥

पार न पावै जास थाह नहिं लहिये जाकी।
गरजै अति गभीर लहर की गिनति न ताकी ॥
सुखसों तिरै समुद्र को, जे तुम गुन सुमराहिं।
लोल कलोलन के शिखर, पार यान ले जाहिं ॥

उद्भूत भीषणजलोदरभारभुग्ना शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशा।
त्वत्पादपङ्कजरजोमृतदिग्धदेहा, मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपा ॥४५॥

महा जलोदर रोग, भार पीडित नर जे हैं।
वात पित्त कफ कुष्ट आदि जो रोग गहै हैं ॥
सोचत रहैं उदास नाहि जीवन की आशा।
अति घिनावनी देह, धरैं दुर्गन्धि निवासा ॥
तुम पदपकज धूल को जो लावैं निज अग।
ते नीरोग शरीर लहि, छिनमें होय अनग ॥

आपादकंठमुरुशृ खल वेष्टितांगा, गाढ बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजघाः।
त्वन्नाममत्रमनिश मनुजाः स्मरत., सद्याः स्त्रय विगतवधभयाभवति ॥४६॥

पांव कंठतैं जकर बांध साकल अति भारी।
गाढी बेडी पैर माहि, जिन जांघ विदारी ॥
भूख प्यास चिंता शरीर दुख जे विललाने।
सरन नाहिं जिन कोय भूपके बदी खाने ॥
तुम सुमरत स्वयमेव ही बंधन सब खुल जाहि।
छिनमें ते सपति लहैं, चिंता भय विनसाहि ॥

मत्तद्विपेंद्रमृगराजदवानलाहिसग्रामवारिधिमहोदरबधनोत्थं।
तस्याशु नाशमुपयाति भय भियेव, यस्तावक स्तवमिम मतिमानधीते ॥४७॥

महामत्त गजराज और मृगराज दवानल।
फणपति रणपरचड नीरनिधि रोग महाबल ॥
बधन ये भय आठ डरपकर मानों नाशै।
तुम सुमरत छिनमाहि अभय थानक परकाशै ॥
इस अपार ससार मैं शरन नहीं प्रभु कोय।
यातैं तुम पदभक्त को भक्ति सहाई होय ॥

स्तोत्र सृज तव जिनेंद्र गुणैर्निबद्धां, भक्त्या मया विविधवर्णविचित्रपुष्पां।
धत्ते जनो य इह कठगतामजस्र, त मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

यह गुनमाल विशाल नाथ तुम गुनन सँवारी।
विविधवर्णमय पुहुप गूथ मैं भक्ति विथारी ॥
जे नर पहिरैं कठ भावना मन में भावैं।
मानतुंग ते निजाधीन शिव लछमी पावैं ॥
भाषा भक्तामर कियो, हेमराज हित हेत।
जे नर पढ़ैं सुभावसों, ते पावैं शिवखेत ॥